थोड़ा सा मंटो

– कहानी संग्रह

कौशलेन्द्र

आलोक प्रकाशन

थोड़ा सा मंटो

(कहानी संग्रह)

कौशलेन्द्र

C- 2019- कौशलेन्द्र

आलोक प्रकाशन

आमुख

पानी के बुलबुलों की तरह किस्से भी बनते और फूटते रहते हैं। बुलबुले जन्म लेते हैं और कुछ पलों के बाद फूटकर पानी के साथ एकाकार हो ज़ाते हैं। बहता हुआ पानी भी धीरे-धीरे धरती में समाता रहता है। फिर भी कुछ कहानियाँ ऐसी होती हैं जो दीर्घकाल तक हमारी स्मृतियों में बनी रहती हैं, किसी खास बुलबुले की तरह।

बुलबुलों की तरह किस्से भी काल्पनिक नहीं हुआ करते। कोई भी किस्सा किसी एक के लिए गल्प हो सकता है तो किसी दूसरे के लिए सत्य। धरती के किसी न किसी हिस्से में कोई न कोई किस्सा हर समय दोहराया जा रहा होता है। इनमें से कुछ को ही हम अपनी अंतःदृष्टि से देख पाते हैं, और जितने देख पाते हैं उनमें से कुछ ही हमारे मन-मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव डाल पाते हैं। वास्तव में महत्व किस्सों का नहीं बल्कि हमारी दृष्टि का होता है... हमारी संवेदना का होता है। इसलिए किस्से तो दुनिया भर के होते हैं किंतु जब वे कहानी बनकर कागज़ पर उतरते हैं तो वे कहानीकार का ही दृष्टिकोण प्रस्तुत किया करते हैं।

प्रस्तुत संकलन "थोड़ा सा मंटो" की कहानियाँ भी हमारे-आपके आसपास की ही कहानियाँ हैं अतः यह कहानी संकलन समर्पित है धरती के हर उस मनुष्य को जिसे पसन्द हैं किस्से।

कौशलेन्द्र
पौष अमावस, विक्रम संवत् २०७४
(दिनांक – १८-१२-२०१७)

अनुक्रमणिका

अनुक्रम	शीर्षक	पृष्ठ क्रमांक
१.	वो बिहारी लड़की	०१
२.	जेण्ट्स या लेडीज़	०३
३.	बद्बूदार लड़का	०५
४.	तर्क	०७
५.	कल मैंने पिल्स ली थी ?	०९
६.	इतनी सी ही चाहत	१२
७.	तू क्यों आया रे वसंत !	१४
८.	कलियुग में भी	१६
९.	खजूर थी नीम हो गई	२१
१०.	नारायणपुर की मड़ई का नीलकण्ठ	२६
११.	साम्यवादी पूँजीवाद की कहानी	३०
१२.	स्वामित्व	३५
१३.	शिवभक्त रावण की रस साधना	३७
१४.	मूर्ति मर सकती है	४२
१५.	भोर का अँधेरा	४४
१६.	समाधान	४६
१७.	ये रिश्ते	५०
१८.	आँधी	५२
१९.	कुपुरा	५४
२०.	पत्नी का बंगला	५६
२१.	विकास	६३
२२.	ई हय बनारस हौ बाबू !	६५
२३.	मायने	६७
२४.	अधिकार	६९
२५.	पहचान	७१
२६.	मुक्त चिंतन की तड़प –"किस ऑफ़ लव"...	७७
२७.	प्रलाप	८६
२८.	फिर एक घटिया कहानी	९०
२९.	जनक्रांति	९३
३०.	तापसी की कहानी	९६

१. वो बिहारी लड़की

अक्सर उन दोनों को एक-दूसरे पर आश्चर्य होता। वह सोचता कि दुनिया में इतनी समस्याओं के होते हुए भी लड़की इस तरह बेतहाशा खिलखिलाने की वज़ह कैसे ढूँढ़ लेती है, जबकि लड़की सोचती कि हँसने की इतनी सारी वज़हों के होते हुए भी कोई लड़का इतना सीरियस कैसे हो सकता है ! दोनों कवितायें लिखा करते किंतु उन्हें एक-दूसरे की कवितायें बिल्कुल पसन्द नहीं आतीं। लड़के की कविताओं में समस्यायें होतीं, गम्भीर विमर्श होता, क्रांति की बातें होतीं... । लड़की की कविताओं में फूल होते, तितलियाँ होतीं, रंग होते, झरने होते, पानी की कलकल होती ... ।

लड़का उस दिन लायब्रेरी में बौद्ध दर्शन पढ़ रहा था। लड़की उसे खोजती हुई वहाँ आई और लड़के के पास आकर खड़ी हो गई। दो मिनट बाद ही उसे लगने लगा जैसे वह वहाँ कई घण्टे से खड़ी है। उसने खीझकर एक कागज़ को पोंगी सा लपेटा और लड़के के कान में धीरे से छुआ दिया। उसे इस काम में बड़ा मज़ा आया लेकिन लड़के का पारा सातवें आसमान पर पहुँच गया। उसने लड़की की जम कर ख़बर ली – "न ख़ुद पढ़ती है न दूसरों को पढ़ने देती है"। और अंत में यहाँ तक कह दिया कि वह अपनी ज़िन्दगी में कुछ भी नहीं कर सकेगी, बस ऐसी ही रहेगी... "बुड़बक कहीं की"।

"हुँह ! बड़ा आया आइंस्टीन कहीं का" – लड़की बुदबुदाती हुई वहाँ से चली गई। "ये ज़िन्दगी भर यूँ ही रहेगा नागफनी बनकर" – लड़की ने गुस्से में बद-दुआ भी दे दी। लड़के पर उसकी बद-दुआ का कोई असर नहीं पड़ा, बुदबुदा कर दी हुई बद-दुआ सुनाई ही किसे पड़ती है।

लड़की लायब्रेरी से निकलकर सीधे बाहर सड़क पर आ गई। उसने मूँगफली के ठेले के पास जाकर दो अधूरे वाक्य उछाले, बोली – "पचास ग्राम चिनिया बदाम... दू पुड़िया नमक"।

मूँगफली लेकर वह करंज के पेड़ के नीचे जा बैठी। मूँगफली छीलकर खाने से पहले उसने चुटकी भर नमक लेकर मुँह में डाला फिर मूँगफली छीलते-छीलते बुदबुदाई – "वह ढोंगिया क्या जाने चिनिया बदाम का स्वाद" !

लड़के की चिंताओं का अंत नहीं था। देश में व्याप्त भ्रष्टाचार, बाबा आसाराम, भगवान रामपाल, गॉड रामरहीम सिंह, बढ़ते यौनदुष्कर्म, बोकोहरम, इस्लामिक स्टेट, ख़ूनी ज़ेहाद, अमेरिका का दोगलापन, शातिर चीनी खंज़र...। "उफ़्फ़" ! लड़का सोचता – "कलियुग अपने चरम पर पहुँच गया है या अभी कुछ और भी बाकी रह गया"।

दो-चार मूँगफली खाने के बाद ही लड़की ने ठोंगे को पर्स के हवाले कर दिया। सोचने लगी – मैं कोई गाय-गोरू हूँ जो अकेले-अकेले चरती रहूँ। तभी उसने देखा कि सामने की झाड़ी पर एक नीलकण्ठ अभी-अभी आकर बैठा है। लड़की खुश हो गई... खुश ही नहीं हो गयी बल्कि बेतहाशा हँसने भी लगी। हँसते-हँसते उसकी आँखों की कोर पर आँसू आ गए।

"माई रे" ! – हँसी का ज्वार कम होते-होते लड़की के मुँह से निकला । उसे इतना भी होश नहीं रहा कि जान पाती लड़का कब आकर उसके पीछे खड़ा हो गया था । लड़के ने कहा – "अकेले में बेतहाशा हँसना एक गम्भीर स्थिति है । माँ से कहना किसी सायकियाट्रिस्ट को दिखाएं" ।

लड़की पूनो के चाँद सी चमक उठी, पलटकर बोली – "माँ को तो समय नहीं है, आप ही ले चलिए न मुझे किसी सा-इ-किया-ट्रिस्ट के पास । लेकिन रुकीं बाबू साब, पहले चिनिया बदाम त खा लीं" ।

लड़की फिर हँसने लगी... बेतहाशा ।

लड़की को लगता कि दुनिया में कितने मज़ेदार विषय हैं, कितनी ख़ूबसूरती बिखरी पड़ी है... पर कुछ लोग यह सब क्यों नहीं देख पाते ? और जो कुछ भी देख पाते हैं वे ...उसे देखकर आख़िर पाना क्या चाहते हैं ? दुःख देखकर ही सिद्धार्थ बुद्ध हो गए... बुद्ध होने से भी क्या हुआ ? दुःख तो आज भी हैं... आगे भी रहेंगे...। देखने और भोगने के लिए और भी कुछ है... बहुत कुछ है जो जीवन को जीवन होने की अनुभूति कराता है । हम नागफनी ही क्यों देखें जबकि देखने के लिए कमल भी हैं ।

कमल का विचार आते ही लड़की ने लड़के से कहा – "सुनिये आइंस्टीन जी ! मेरे लिए दलपत तालाब से कमल ला देंगे... ख़ूब से कमल ? मुझे माला बनाना है" ।

लड़का अवाक रह गया – "यह लड़की पागल हो गई है क्या ? इसे खूब से कमल चाहिए... वह भी माला बनाने के लिए" ।

लड़के ने जाते-जाते कहा – "जीतनराम मांझी के घर के पिछवाड़े बहुत से बेसरम के फूल खिले हैं, जाकर तोड़ लाना" ।

लड़की ने खिलखिलाकर कहा – "ऊ हो चली बाबू साब ! रउरे लिया दीं नू" !

***

२. जेण्ट्स या लेडीज़

अब आप उसकी उम्र मत पूछिए, बस इतना जान लीजिए कि वह मीनोपॉज़ल सिण्ड्रोम से पीड़ित थी। यह वह समय होता है जब स्त्रियों में एक बार फिर शारीरिक और व्यावहारिक परिवर्तन होते हैं। एक दिन सुबह-सुबह उसने कहा – "सुनिए ! मुझे हिन्दी में एम.ए. करना है, मेरे लिए यूनीवर्सिटी से फ़ॉर्म ला दीजिए"।

शायद यह आदेश था क्योंकि उसने उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही 'अहा ज़िन्दगी' के पृष्ठ पलटने शुरू कर दिए थे।

पति ने अपनी हेडलाइट का फ़ोकस स्त्री के चेहरे की ओर करते हुए एक एक्स-रे फ़ोटो खींचने का प्रयास किया किंतु खींच नहीं सका। किसी स्त्री के चेहरे को देखकर उसके मस्तिष्क की हलचलों का एक्स-रे इमेज निकाल पाना मज़ाक नहीं होता। वह खीझकर चिल्लाया – "मुझे ग्रीन टी चाहिए... अभी"।

स्त्री ने सिर ऊपर उठाए बिना ही पूछा – "अभी क्यों" ?

पति ने कहा– "क्योंकि मेरे मस्तिष्क को एण्टीऑक्सीडेण्ट्स की अभी ज़रूरत है... सख़्त ज़रूरत है। ...क्योंकि तुम्हारी योजनाओं और विचारों के आघात से उत्पन्न हुये फ्री रेडिकल्स के कारण मैं तुम्हारी किसी भी बात को समझ पाने में स्वयं को असमर्थ पाता हूँ। ...अब इस उम्र में एम.ए. करना है तुम्हें... पागल हो गई हो" ?

स्त्री ने प्रतिप्रश्न किया – "क्यों ? नहीं कर सकती क्या ? एज़ बार हो गई हूँ" ?

उसने प्रमाण देना शुरू कर दिया –"देखिए ...मैं अभी भी उतनी ही फ़ुर्ती से पेड़ पर चढ़कर टिकोरे तोड़ सकती हूँ... और बिगड़ैल बछड़ों को नाथ सकती हूँ। बस्स... अब मेरे लिए फ़ॉर्म ला दीजिए"।

प्रतिकूल परिस्थिति में भी पति को हँसी आ गई, पूछा – "यूनीवर्सिटी के फ़ॉर्म से इन सब बातों का क्या सम्बन्ध" ?

स्त्री ने 'अहा ज़िन्दगी' को एक ओर सरकाया और पास आकर शरारत से इठलाती हुयी बोली – "ए हो राज्जा ! फ़ॉर्म से किन बातों का सम्बन्ध होता है ? मुझे बताइये न... मैं वही बातें करूँगी"।

पति ने समझाने का प्रयास किया – "देखिए ! हिन्दी में एम.ए. करना हँसी-खेल नहीं है... परास्नातक का अर्थ समझती हो... ज्ञान की गंगा में आकण्ठ स्नान। कर सकोगी तुम ? एक वाक्य तो शुद्ध बोलना सीख नहीं पाईं"।

स्त्री चुहुल के मूड में आ गई, बोली – "अगर शुद्ध बोल पाती तो एम.ए. करने की ज़रूरत ही क्या थी ? लोग पढ़ते क्यों हैं... सीखने के लिए ही तो न ! मुझे शुद्ध हिन्दी बोलना सीखना है... इसके लिए मुझे पढ़ना है"।

पति को आश्चर्य हुआ, अभी कल तक जो स्त्री भाषा के बरसाती नाले वाले स्वभाव के पक्ष में तर्क देती नहीं थकती थी वही आज अनायास शुद्ध हिन्दी सीखने की बात कर रही है। 'लेडी' और 'लेडीज़' के प्रयोग को लेकर न जाने कितनी बार उनमें विवाद हो चुका था। स्त्री तर्क करती कि बड़े-बड़े पढ़े-लिखे लोग भी तो एक स्त्री को 'लेडीज़' ही बोलते हैं। भाषा वही जो आम आदमी की ज़ुबान पर हो। यह क्या कि मंत्र जैसे बोलते जाओ और सुनने वाले जजमान की तरह मुँह ताकते रह जायें कि पंडिज्जी बोल क्या गए ? संपूर्णानन्द विश्वविद्यालय के आचार्यों की 'कलफ़ लगा कर इस्त्री की हुई नील-टिनोपाल वाली हिन्दी' उसके लिये किसी परग्रही भाषा से कम नहीं हुआ करती थी।

जयशंकर प्रसाद की हिन्दी को भी वह 'ये भी कोई हिंदी हुयी ...गोया कलफ़ लगा कर इस्त्री की हुई सूती साड़ी' कहा करती थी। यह सुनते ही पति चिढ़ जाता – "तुम्हारे जैसे लोगों ने ही हिन्दी की दुर्दशा कर रखी है। परिष्कृत भाषा ही अभिव्यक्ति को सबल और सम्प्रेषणीय बनाती है"।

स्त्री कहती – "अभिव्यक्ति के लिये तो भाषा की भी इतनी आवश्यकता नहीं होती... संकेतों से भी काम चल सकता है"।

पति को चुप रह जाना पड़ता। वह मन ही मन सोचता – कुण्डली में राक्षस गण का क्या महत्व होता है अब समझ में आ रहा है।

स्त्री ने पति को मनाने की गर्ज़ से कहा – "सुनिये न ! अब जब तक दो-चार लेडियाँ न दिख जायें मैं कभी एक जनानी को 'लेडीज़' नहीं कहूँगी... 'सहायतार्थ हेतु' कभी नहीं बोलूँगी... अब तो ला देंगे न फ़ॉर्म" ?

पति के दिमाग की रस्सियाँ फिर उलझ गईं, वह बुदबुदाया – "फिर लेडियाँ..."

स्त्री ने उसका बुदबुदाना अनसुना कर उत्साहित होकर फिर पूछा – "बोलिए... लाएँगे न ! मैं आज से आपकी स्टूडेण्ट बन कर रहूँगी... एकदम गुड गर्ल जैसी... अब तो ला दीजिए न" !

पति मुस्कराया – "गर्ल तो तुम अभी भी हो... हाँ ! गुड गर्ल बनने के लिये तप अवश्य करना पड़ेगा"।

स्त्री प्रफुल्लित हो उठी, उसने अपनी चिनिया बदाम जैसी आँखों को विस्फारित करते हुए पूछा – "क्या कहा... मैं गर्ल हूँ... सच्ची" ?

पति ने धीरे से कहा – "जानती हो... तुम कितनी भी बड़ी क्यों न हो जाओ... मेरे लिये हमेशा लड़की ही रहोगी... एक बदमाश लड़की"।

स्त्री ने चुहुल की – "आपके लिए ही रहूँगी बदमाश लड़की ? किंतु मैं मेरे लिये क्या रहूँगी... जेण्ट्स या लेडीज़" ?

***

३. बद्बूदार लड़का

ठंड से डरने वाले उस निहायत आलसी लड़के ने पिछले तीन दिन से स्नान नहीं किया था, आज यह उसका चौथा दिन था। उसके पूरे शरीर से ग़र्मियों में पहनी गईं ज़ुर्राबों जैसी प्राणघातक दुर्गन्ध आ रही थी। इसके बाद भी ख़ूबसूरत लड़की, जो माइनस दस डिग्री की ठण्ड में भी स्नान करने से कभी परहेज़ नहीं करती थी पिछले तीस मिनट से उसके पास बैठी थी। लड़की के शरीर से निकल रहे पर्फ़्यूमिक रेडिएशन से बेपरवाह लड़का हकला-हकला कर कुछ बोले जा रहा था और लड़की एक सुधी श्रोता की तरह चुपचाप उसकी बातें सुनती जा रही थी।

लड़का घोर फ़ैशनेबल था यानी बेतरतीब बाल, और बढ़ी हुई दाढ़ी ने उसे लेटेस्ट फ़ैशनप्रेमी का ख़िताब दे दिया था। गुजरात के भेंड़ चराने वाले घुमंतू गड़रियों की तरह लड़के को अपने बेशुमार गन्दे हो चुके कपड़ों से कभी कोई शिकायत नहीं रही। लड़के ने कभी किसी चीज को पाने का प्रयास नहीं किया फिर भी वह भाग्यशाली था कि हमेशा कुछ न कुछ उसकी झोली में आ कर गिर ही जाता था सिवाय इसके कि अभी तक उसका एक भी प्रोफ़. एक्ज़ाम क्लियर नहीं हो सका था। एनाटॉमी और पैथोलॉजी से लेकर बायोकेमिस्ट्री तक ने लड़के को श्राप दे रखा था। थ्योरी में पासिंग मार्क्स के जुगाड़ से वंचित लड़का पूरी तरह बेफ़िक्र था। यह उसके परमहंस होने की दिशा में आगे बढ़ने का एक प्रमाण था। लड़की हर प्रोफ़. एक्ज़ाम में टॉप करती किंतु इससे लड़के को कभी ईर्ष्या नहीं हुई। हाँ, लड़की नम्बर दो, पाँच और आठ को इस जोड़ी को लेकर अवश्य हैरत भी होती और ईर्ष्या भी। अन्य लड़कियाँ उस ख़ूबसूरत और पढ़ाकू लड़की को सुधारने की गरज़ से कई बार कह चुकी थीं – "पता नहीं तुम बर्दाश्त ही कैसे कर पाती हो उसे... बद्बूदार डर्टीमैन स्साला... न पढ़ने का न लिखने का... माँ-बाप पर बोझ..."।

लड़की कुछ असहज हो जाती... उसे अच्छा नहीं लगता यह सब सुनकर। वह सिर्फ़ इतना कहती – "नो-नो ही ज़ अ गुड एन कम्प्लीट मैन... और फिर ज़ल्दी से आगे बढ़ जाती"।

पिछले साल, जब सब लोग सेकेण्ड प्रोफ़ की तैयारी में दिन-रात एक किए दिए रहे थे तभी एक दिन सबने सुना कि लड़का कहीं ग़ायब हो गया है। लड़की चिंतित हो गई, बता कर भी नहीं गया... कहाँ गया होगा। एक महीने की प्रतीक्षा के बाद उसने डरते-डरते लड़के की अम्मा को फ़ोन लगाया... और फिर हंगामा हो गया।

कुछ दिन बाद पता चला कि उस कम्प्लीट मैन को उससे पाँच साल बड़ी एक लड़की लेकर कहीं चली गई थी। दो महीने बाद माँ-बाप के पैसे फूँक कर सूखकर काँटा हुआ लड़का जब वापस आया तो लड़की उसे देखकर रो पड़ी। पाँच साल बड़ी लड़की अपने से छोटे लड़के को उसके हॉस्टल में फेंककर अपने घर चली गई थी... ठीक वैसे ही जैसे लड़का बेशुमार गन्दी हो चुकी अपनी बद्बूदार ज़ुर्राबों को धो कर साफ करने के स्थान पर खिड़की से बाहर फेंक दिया करता था।

रोज स्नान करने वाली, पर्फ़्यूमिक रेडिशन वाली ख़ूबसूरत लड़की कॉलेज के बाद उस लापरवाह और बद्बूदार लड़के को पास के एक होटल में लेकर गयी। उदास लड़की ने मरघिल्ले हो चुके लड़के के लिए खाना ऑर्डर किया – दाल मखनी, पालक-पनीर, फ़ाइड राइस और दही।

लड़के का खाना ख़त्म हो चुका था लेकिन लड़की की आँखों का पानी अभी ख़त्म होने का नाम नहीं ले रहा था। लड़की की नाक का अगला हिस्सा लाल हो चुका था और रुमाल पूरी तरह गीला। इस बीच किसी ने किसी से कोई बात नहीं की।

लड़की ने काउण्टर पर जाकर बिल अदा किया। दोनों बाहर आए तो लड़की ने लड़के के हाथों में कुछ रुपये थमा दिए और तेजी से टैक्सी की तरफ़ बढ़ गई।

लड़के की आँखें लाल हो गईं थीं... होटल में खाना खाते वक़्त उसने बड़ी संज़ीदगी से वह सब कुछ सुन लिया था जो टॉपर लड़की उससे पहले कभी नहीं कह सकी थी।

***

४. तर्क

वह एक शिष्ट लड़की थी, सुरुचिपूर्ण और सुन्दर भी। एक दिन जब लड़के ने उसे बताया कि कोई कितना भी शिष्ट क्यों न हो अन्दर से हर व्यक्ति थोड़ा सा मंटो ज़रूर होता है तो लड़की को आश्चर्य से अधिक दुःख हुआ। वह सोचने लगी – सचमुच क्या हर व्यक्ति अन्दर से मंटो होता है ?

लड़का सफ़ाई देता – "मंटो होना गाली नहीं है ज़िन्दगी की सच्चाई से रू-ब-रू होना है। लोग मंटो के प्रति पूर्वाग्रह से ग्रस्त हैं। लोगों को सआदत अली हसन मंटो के साहस और उनकी साहित्यिक सच्चाई को स्वीकार करना चाहिए"।

लोगों की दृष्टि में लड़का कुछ-कुछ लफूट था... और लापरवाह भी। शब्दों पर उसका नियंत्रण कुछ-कुछ शिथिल था। मतलब यह कि संवाद के समय अश्लील शब्दों के प्रयोग से उसे कोई ख़ास परहेज नहीं था लेकिन लड़की को इससे सख़्त ऐतराज़ था। वह नाराज़ होकर कहती – "अश्लील शब्दों के बिना कोई बात पूरी नहीं हो सकती क्या" ?

लड़का पूरे आत्मविश्वास के साथ कहता – "बहुत बड़े-बड़े लोग... द सो काल्ड उच्च शिक्षित लोग... बड़े-बड़े राजनेता और सचिव जैसे लोग भी अपने मित्रों के साथ संवाद में अश्लील शब्दों को लेकर इतने पूर्वाग्रही नहीं होते। बहुत कम लोग होंगे जो अश्लील शब्दों से परहेज करते हैं"।

लड़की इसे कुतर्क कहकर ख़ारिज़ कर देती। उसका बस चलता तो अश्लील शब्दों के प्रयोग पर प्रतिबन्ध ही लगा देती। लड़का इससे कभी सहमत नहीं होता। वह कहता – "प्रतिबन्ध किसी स्वाभाविक प्रवाह की दिशा तो बदल सकता है किंतु उसे अवरुद्ध नहीं कर सकता"।

एक समय था जब अक्रोध की स्थिति में सहज प्रयुक्त अश्लील शब्दों के उच्चारण से पहले लोग सचेत हो कर देख लिया करते थे कि आसपास कहीं कोई महिला तो नहीं है। आधुनिक पीढ़ी के लिये इस मर्यादा के विचार का कोई अर्थ नहीं रह गया। आम तौर पर लड़कियाँ भी इस नए परिवेश में ढलती जा रही हैं किंतु हर लड़की ढल जाय यह आवश्यक तो नहीं।

पुरुष खेमे में बहुप्रचलित अश्लील शब्द जब-जब उस शिष्ट लड़की के कानों में पड़ते वह असहज हो उठती। कानों में पड़े शब्द चित्र बनकर प्रकट हो जाते और उसे लगता कि वह किसी कोठे के सामने आ खड़ी हुई है।

एक दिन लड़के ने पूछा – "तुमने नाना पाटेकर और पल्लवी जोशी वाली वह मूवी देखी है... तृषाग्नि" ?

लड़की ने 'ना' में सिर हिलाया तो लड़के ने कहा – "तुम... तुम वही हो... नाना पाटेकर। तुम्हें पल्लवी जैसा होना चाहिये... सहज... और निर्मल। तब ये शब्द चित्र नहीं बनेंगे... चित्र बने बिना उड़ जाया करेंगे"।

लड़की को इस फ़िलॉसफ़ी से भी ऐतराज़ था, वह कहती – "सभ्य और शिक्षित समाज की कोई मर्यादा नहीं होनी चाहिये क्या ? संस्कार का मनुष्य समाज के लिये कोई महत्व नहीं है क्या" ?

लड़का फिर तर्क करता .....
लड़की फिर तर्क करती .....
यह बहस कभी समाप्त नहीं हो पाती ....
यह बहस आज भी चल ही रही है।

***

५. कल मैंने पिल्स ली थी ?

मैं ईश्वर को हाज़िर-नाज़िर मान कर स्वीकार करता हूँ कि यह एक 'मिष्टी प्रेमेर कोथा' नहीं है, कम से कम उस लड़के की दृष्टि में तो बिल्कुल भी नहीं जो अब इतना बड़ा हो गया है कि लोगों ने उसे लड़का कहना बन्द कर दिया है। वह बात अलग है कि उसके बाबू जी की दृष्टि में वह अभी भी लड़का ही है। आज मैं एक ऐसे लड़के की कथा कह रहा हूँ जो अपनी गदह-पचीसी की उम्र से गुज़रते वक़्त भी खुद को मानसिक और वैचारिकरूप से पूर्ण वयस्क मानता है। तो चलिए, कथा सुनने और देखने के लिये चलते हैं देवभूमि हिमालय की एक चोटी पर जहाँ से निकलती है भाग-सू नदी।

पवित्र भाग-सू नदी जिस चोटी से निकलती है उसके दुर्गम मार्ग पर है शिवा कैफ़े... यानी मैक्लॉडगंज में हिमालय की एक उलझी हुयी जटा के एक छोर पर स्थित हुक्का हाउस। इस हुक्का हाउस में शिव की इतनी ही भूमिका है कि यहाँ दम-मारो-दम समुदाय के इष्टदेव माने जाने वाले भोले शंकर का एक पत्थर पर चित्र बना दिया गया है गोया हिमालय की दुर्दशा पर टिली-लिली स्टाइल में शिव को चिढ़ाने की कोई बदतमीज़ मुहिम का एक हिस्सा हो।

स्वतंत्र विचारों वाली आधुनिक लड़की ने सुना कि वहाँ... उस चोटी पर एक हुक्का हाउस है तो वह ऊँचाई की परवाह किए बिना वहाँ तक चढ़ने के लिये मचल उठी। लड़के ने कहा – "यार तू दिल्ली में तो चलने में इत्ते नखरे दिखाती है... उत्ती ऊँचाई पे चढ़ भी पाएगी" ?

ख़ूबसूरत लड़की ने इसे चुनौती की तरह स्वीकार किया और अपने जनानेपन की तौहीन की प्रतिक्रिया में दिल्ली स्टाइल में गहरी लिपिस्टिक अपने अधरों पर पोतते हुये कनपुरिया स्टाइल में कई हज़ार बोल्ट वाली नक्शेबाज़ी दिखाते हुये अपना पर्स उठाया और हिमालय की छाती पर चढ़ने लगी।

लड़के को भी लड़की के पीछे-पीछे जाना पड़ा। वे दोनों 'लिव इन रिलेशनशिप' के न केवल पैरोकार थे बल्कि स्वयं भी उसके नित्य अभ्यासी थे। ...यानी एक ऐसा अभ्यास जो योरोप के अविकसित समाज में एक विवश व्यथा के रूप में प्रचलित हुआ और अब अपनी मुक्ति की प्रतीक्षा में है।

लिव इन रिलेशनशिप के अभ्यास के दौरान आपतित आनन्द के साइड इफ़ेक्ट्स की सम्भावनाओं का प्रतिकार करने के लिए चिकित्सा विज्ञान उनकी मदद के लिए हमेशा पलक-पाँवड़े बिछाए रहता था, इसलिये दोनों का जीवन उन्मुक्त था और वे जीवन को भरपूर जीने का अभ्यास कर रहे थे।

लड़की आगे-आगे चढ़ती जा रही थी... लड़का अर्दली की तरह चिप्स, बिस्किट, थम्स अप की बोतल... और न जाने क्या-क्या अपने पिट्ठू बैग में भर कर पीछे-पीछे अनुसरण कर रहा था। 'शिवा' भक्तों द्वारा बिना रास्ते के बनाए हुए रास्ते पर चढ़ते-चढ़ते लड़की पसीने से तर-ब-तर हो गई। उसने पीछे मुड़कर चिल्लाते हुये कहा – "कहाँ हो अभी तक... मुझे प्यास लग रही है..."।

लड़की की प्यास का कोई अंत नही था...

लड़का हाँफता हुआ तेज़ी से चढ़ने लगा। लड़की एक पत्थर पर बैठकर सुस्ताने लगी।

लड़के ने बोतल का ढक्कन खोलकर लड़की के आगे पानी पेश किया। लड़की ने गला तर किया... कुछ पानी बगावत करके उसके सीने पर भी बिखर गया। सीना जो पहले ही पसीने से तर था... अब पानी से और भी तर हो गया। त्वचा से चिपक गये कपड़ों ने लड़के को जनाने तन की लिपि पढ़ने में सुविधा

प्रदान की। एक्स-रे विज़न की मर्दानी भेदक क्षमता से लड़की परिचित थी... और अभ्यस्त भी, उसे अच्छा लगा। उसने लड़के को छेड़ा – "क्या बात है... अभी से मंटो-मंटो होने लगे"।

लड़की, शर्म से लाल हो गए लड़के की मर्दानगी पर निहाल हो गई।

लड़की ने अंकल चिप्स का पैकेट खोला... दोनों ने चिप्स चबाए और फिर उन दोनों पोस्ट ग्रेजुएट भारतीय नागरिकों ने खाली पैकेट और पानी की बोतल को हिमालय के सीने पर उछाल कर आनन्द का अनुभव प्राप्त करते हुए आगे की ओर प्रस्थान किया।

शिवा कैफ़े पहुँचकर दोनों को बहुत अच्छा लगा। वहाँ अति आधुनिक लड़कों-लड़कियों के समूह थे जिन्हें देखकर कोई भी एक क्षण में यह बता सकता था कि वे भारतीय हिप्पी संस्कृति के अनुयायी थे। वे भारतीय स्टाइल वाली खिचड़ी अंग्रेजी में बात करते थे, विदेशी कम्पनी के चिप्स चबाते थे, चीन का चाऊमीन चखते थे, ख़ुश्बूदार धुयें वाला पाकिस्तानी हुक्का सूँघते थे और फ्रेंच हाला को प्याले के बिना ही सीधे हलक में छलकाते थे।

वहाँ सम्भोग से समाधि की ओर प्रस्थान करने का अभ्यास किए जाने की लोकतांत्रिक स्वतंत्रता थी जिसके लिए रात्रि में पंचमकार साधना की समुचित व्यवस्था शिखरमूल्य पर उपलब्ध थी। नवधनाड्य भारतीय परिवारों की उच्चशिक्षित युवापीढ़ी वहाँ भाँति-भाँति के आचरण कर स्वयं को धन्य मान अपने नश्वर जीवन को सार्थक किया करती थी।

देवभूमि हिमालय के वक्ष पर टहलते हुए लड़की ने अपनी आँखों पर चढ़े गहरे रंग वाले ऐनक को पचहत्तर डिग्री में ऊपर की ओर उठाते हुए अपनी खोपड़ी के बालों पर रख दिया। लड़की के शरीर में आँखे ही थीं जो अभी तक काँच के आवरण से सचमुच में ढकी थीं, वह भी पूरी तरह... अब वे भी नग्न हो चुकी थीं। हिमालय से उतरती भाग-सू नदी ऐसे दृश्यों की अभ्यस्त हो चुकी थी इसलिये उसने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त किए बिना अपना सूफी संगीत चालू रखा – "कलकल-छलछल, हर पल छल-छल, कब तक छल-छल...अब और न छल ...अब और न छल..."।

सूरज ढला तो रात साकीबाला की पोशाक पहनकर आ गई, उसने रोज की तरह देवभूमि हिमालय को एक गहरे रंग की चादर ओढ़ा दी जिससे वहाँ आए लोगों को मनुष्य योनि में रहते हुये पशुवत् आचरण के ज्वार को अपने शिखर तक ले जाने में सुविधा प्राप्त हो सके।

जब भोर भयो और सूरज उग आयो... तो लड़की ने अलसायी आँखों से ख़ुद को एक अपरिचित लड़के के पास पड़्यो पायो। परिचित लड़का एक दूसरी अपरिचित लड़की की बाहों में लिपटो पड़्यो पायो गयो।

अहा ! श्याम ! रात भर भरतपुर लुट्यो... तूने ऐसो रास रच्यो !

रात की किशोरावस्था में सभी जोड़े अपने-अपने परिचितों के साथ थे... रात के जवान होते ही अपरिचित भी परिचित हो गए और जोड़ों ने नवउमंग में नई अँगड़ाइयाँ भर ली थीं... एकरसता को बहुरसता का स्वाद प्राप्त हुआ।

अलसाये जोड़ों ने नेत्र उन्मीलित किए, एक-दूसरे की देह से अलग हुए, उठे और चल दिए... अपने-अपने परिचित साथी के पास... गोया गंतव्य पर पहुँचते ही ट्रेन और उस बर्थ से उन्हें कोई मतलब न रहा हो जिस पर वे रात भर चैन से सोए थे।

शिवा कैफ़े में सुबह-सुबह गाना बज उठा – ".....दिल्ली वाली गर्ल-फ़्रेण्ड छोड़-छाड़ के....."

दिल्ली वाली ख़ूबसूरत लड़की अपने परिचित लड़के के पास आई और फुसफुसा कर पूछा – "सुनो ! मुझे याद नहीं है... कल मैंने पिल्स ली थी" ?

***

६. इतनी सी ही चाहत

लड़की के लिये उस गीत की एक ही पंक्ति काफी थी घण्टों सपनों में खोए रहने के लिए। सुनने में यह बात अतिशयोक्ति सी लग सकती है किंतु बात है बिल्कुल सच्ची। जब वह चरवाहा ऊँचे सुर में गाता – "हाली-हाली चलऽ रे कहँरवा सुरज डुबे न दिहऽ..." तो लड़की की आँखें देखने लगतीं कि चार कहाँर अपने काँधों पर डोली उठाए धूल भरे पाँवों से बटहा-बटहा होते हुए ज़ल्दी-ज़ल्दी चले जा रहे हैं। बटहा के दोनों ओर पतार होती... तलवार जैसे पत्तों वाली पतार। वह डोली को कभी सामने से देखती, कभी पीछे से तो कभी आगे से। पसीने से लथपथ कहाँर बीच-बीच में काँधा बदलने के लिए एक पल को ठहरते फिर चल पड़ते। सूरज डूबने से पहले उन्हें दुलहन को सुरक्षित पहुँचाना है, उसकी ससुराल।

लड़की सपनों में खोई-खोई देखती कि रास्ते में हर कोस पर वे सुस्ताने के लिए ठहरते... डोली ज़मीन पर उतारते फिर तनिक दूर बैठकर चिलम भरते... दो-दो फूँक मारकर वे फिर चल पड़ते। चलने से पहले अधेड़ कहाँर डोली की ओर मुँह करके दुलहन से पूछता – "पियास तऽ न लागल बा नू... लागी तऽ बऽतइहऽ... पनिया ला देब..."।

लड़की बन्द डोली के अन्दर गठरी बनी बैठी दुलहनिया को भी अपनी आँखों से देख सकती थी... यहाँ तक कि दुलहन की उम्र, उसका रंग और उसकी साड़ी भी। उसकी दिव्य आँखें बहुत कुछ देख सकती थीं। उसका जब मन होता तो वह दुलहन से हँस कर बात भी कर लेती और ठिठोली भी।

लड़की ने अपने गाँव के कहाँर के बरामदे में दीवाल पर बड़ी सी खूँटियों पर डोली को अलग-अलग हिस्सों में टँगे हुए देखा था। कहाँर अब सेठ हो गया था और डोली की प्रथा अब केवल गीतों में ही रह गई थी इसलिये दुलहन की डोली अतीत के किस्सों में समा चुकी थी।

लड़की सोचती, काश ! ज़माना थोड़ा सा पलट जाता तो वह डोली में बैठकर ससुराल जा पाती। उसकी बुआ ने बताया था कि वह तेरह कोस दूर अपनी ससुराल गई थी डोली में, वह भी एक बार नहीं दो-दो बार। एक बार शादी के बाद गौने में, फिर एक बार रौने में। अब तो गौना-रौना सब सिरा गया... कल को कहीं ब्याह भी न सिरा जाय। वह हँस पड़ती... ब्याह भी सिरा जाएगा तो फिर क्या होगा ?

चरवाहे के सुर में कुछ ऐसा था कि कल्पना में खोई-खोई लड़की की आँखें भींग जातीं। गीत के ये बोल – "हाली-हाली चलऽ रे कहँरवा सुरज डुबे न दिहऽ..." लड़की को न जाने कितने भाव दे जाते।

लड़की अब बड़ी हो गई है, गाँव के लड़के उसे लक्ष्य कर गाना गाने लगे हैं – "गोरकी पतरकी रेऽऽऽऽ मारे गुलेलवा जियरा उड़ि-उड़ि जायऽऽ..."। घर वालों को उसके हाथ पीले करने की चिंता सताने लगी है... और लड़की है कि आज फिर जामुन के झाड़ पर चढ़ते समय सलवार फ़ाड़ लाई। दादी को उसकी इन मर्दानी हरकतों से चिंता होने लगती। दादी अपनी चिंता से अपने बेटे को अवगत करातीं – लड़की में अभी तक बचपना है, पता नहीं कब सयानी होगी।

बेटा बात को हवा में उड़ा देता, कहता – "अरे अम्मा आजकल तो लड़कियाँ अंतरिक्ष की सैर कर रही हैं, अपनी बिटिया तो केवल आम-जामुन पर ही चढ़ती है"।

आख़िर एक दिन वह भी आया जब उस लड़की के भी हाथ पीले हो गए। वह भी ससुराल गई... लेकिन डोली का सपना पूरा नहीं हो सका उसका। देवरिया से मुम्बई तक कोई डोली से जा सकता है भला ! लड़की का सपना चूर-चूर हो गया... न धूल भरा बटहा... न कहीं तालाब... न कहीं गन्ने के खेत... न कहीं पतार...। रास्ते में पानी के लिये पूछने वाला कोई कहाँर भी नहीं। ट्रेन में थर्मस आगे बढ़ाते हुये लड़के ने ज़रूर पूछा था – "पानी" ? लेकिन इस पूछने और कहाँर के पूछने में फ़र्क है। लड़की के सपने चूर-चूर होते जा रहे थे।

लड़की को मुम्बई में तनिक भी अच्छा नहीं लगा। बनावटी ज़िन्दगी में उलझे लोग, भागम-भाग करते लोग...। किसी के पास तनिक भी वक्त नहीं होता था। लड़की का दुल्हा एक निम्न मध्यम वर्गीय परिवार से था जो न पूरी तरह आधुनिक था और न पूरी तरह पुरातन। लड़की को गुरु जी की बात याद आई, वे कहते थे कि समाज का यह वर्ग बड़ा ख़तरनाक होता है।

लड़का जब फेरी लगाने चला जाता और लड़की को घर के कामकाज से तनिक फुर्सत मिल पाती तो उसके कानों में चरवाहे का गीत जीवंत हो उठता... बिल्कुल ताज़े-ताज़े... जीवंत सुर, गोया चरवाहा यहीं कहीं गा रहा हो – "हाली-हाली चलऽ रे कहँरवा सुरज डुबे न दिहऽ ..."। लड़की का मन मचल उठता कि वह भाग कर चली जाय अपने गाँव... जा कर कहे चरवाहे से कि हाँ अब गाओ !

लड़की सपनों में खो जाना चाहती थी, बस्स इतनी सी ही चाहत... सपनों में खो जाने की चाहत। सास की चाहत लड़की की चाहत से बड़ी थी... इतनी बड़ी कि लड़की के बाबू उसे पूरा नहीं कर सकते थे। सास, जो कभी ख़ुद भी लड़की थी... दुनियादारी के मुलम्मे में ज़हरीली हो गयी थी। लड़की में उसके ज़हर को पचाने की ताकत नहीं थी।

एक दिन सबने सुना कि रात की लोकल ट्रेन से दोनों वापस लौट रहे थे कि लड़की का पैर फिसल गया और वह ट्रेन के नीचे आ गई। नयी बहू की मौत के ऐसे किस्सों पर कोई यकीन नहीं करता फिर भी भारतीय समाज में ऐसे किस्से गढ़े जाते रहे हैं... गढ़े जाते रहेंगे।

दुनिया उसी तरह चलती रही... पहले की तरह...। हाँ, देवरिया के उस छोटे से गाँव में अब वह चरवाहा चाह कर भी कोई गीत नहीं गा पाता।

***

७. तू क्यों आया रे बसंत !

घर आते ही उसने अपनी फ़्रॉक की झोली चटाई पर उलट कर खाली कर दी । सरसों के पीले फूलों का एक छोटा सा ढेर लग गया । लड़की ने ख़ुश होकर आवाज़ दी – "अम्मा ! देखो तो कित्ते अच्छे फूल" ।

मटर के छिलके बाहर गाय को डालने के लिए निकली अम्मा ने देखा कि उनकी लाड़ली 'बेवड़ी' किसी के खेत से सरसों के फूल उजाड़ लाई थी । लड़की को डाँट पड़ी, पीपल वाले बाबा से पकड़वाने की धमकी दी गई । इतनी डाँट-फटकार के बाद भी लड़की की आख़ें चमक रही थीं, सरसों के पीले रंग ने उसे बावली बना दिया था ।

रंगरूप की बात की जाय तो वह सुन्दर बिल्कुल भी नहीं थी । पड़ोस के बच्चे उसे कई नामों से पुकारकर चिढ़ाया करते किंतु इसका उस लड़की पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता । वह अपने में ही मस्त बनी रहती । अड़ोस-पड़ोस में कच्चे जाम फले हों या कसैली-खट्टी केरियाँ कुछ भी उसकी दृष्टि से बच नहीं पातीं । पड़ोस के बच्चे शिकायत करने आते – देखो आज फिर आपकी बेटी ने हमारे पेड़ से जाम तोड़े । अम्मा चिंतित होतीं कि ऐसी ही रही तो कौन ब्याहेगा उस बेवड़ी को ?

किंतु एक दिन बेवड़ी का भी ब्याह हो गया । बेवड़ी पढ़-लिख कर गाँव के स्कूल में मास्टरनी बन गई थी, उसे एक अच्छा सा दुलहा मिल गया था, सरकारी नौकरी वाला । पड़ोस की लड़कियों को जलन हुयी, लेकिन वह ख़ुश थी ।

वह जब पहली बार मुझसे मिली थी तो उसके व्यवहार में झिझक नाम की कोई चीज नहीं थी, उसका व्यवहार ऐसा था जैसे कि वह मुझे वर्षों पहले से जानती हो । वह साधिकार बात करती और मेरी हर चीज पर अपना अधिकार जताती । इतना ही नहीं वह अपनी हर व्यक्तिगत बात भी साधिकार मुझे बताती । मुझे उसके व्यवहार से आश्चर्य होता ।

तब उसकी शादी नहीं हुई थी और उसे एक वेज़ाइनल सिस्ट हो गया था । लड़की डरी हुई थी... शायद यह पहली बार था जब मैंने उसके चेहरे पर डर की रेखायें देखीं । मैंने उसे किसी गायनिक सर्जन से मिलकर ऑपरेशन की सलाह दी, लड़की और भी डर गयी । तब मैंने उससे कहा कि वह अपनी माँ को लेकर मेरे पास आए ।

मैंने लड़की की माँ को सब कुछ समझाया और ऑपरेशन कराने की सलाह दी । माँ ने आश्चर्य व्यक्त किया कि उसकी बेटी ने इस बारे में कभी उससे कहा क्यों नहीं । बल्कि उसने इस लापरवाही के लिये बेटी को डाँटा भी ।

शादी के बाद वह अपने पति के साथ घूमने के लिये अण्डमान निकोबार गई । पहली बार शिप और प्लेन में बैठकर यात्रा के अनुभव मुझे सुनाने के लिए वह व्यग्र थी । वापस आते ही सबसे पहले उसने

मेरे घर का रुख़ किया और बहुत देर तक बैठकर किस्से सुनाती रही। उसकी आँखों में एक विशिष्ट चमक थी...

ससुराल जाने के बाद भी वह जब-तब मुझे फोन करती रहती थी। एक बार गर्मी के दिनों में भरी दोपहर उसने मेरा दरवाज़ा खटखटाया। वह अपने पति को मुझसे मिलवाने लाई थी।

फिर एक दिन उसने फोन करके बताया कि उसके "वो" दारू पीते हैं और नशे में उसे और बच्चों को ख़ूब पीटते हैं। रोज-रोज की मारपीट से वह आज़िज़ आ चुकी थी। सुनकर मैं सन्न रह गया। इस बिन्दास लड़की के सीने में कितना कुछ दफ़न है।

एक दिन वह फ़ोन पर देर तक रोती रही...। मैं उसे चुप कराने का प्रयास करता रहा। जब वह चुप हुई तो उसने बड़ी मुश्किल से बताया कि उसके पति अब नहीं रहे। डॉक्टर ने मृत्यु का कारण एड्स बताया था।

वह चिंतित थी कि कहीं उसे भी तो एड्स नहीं हो गया होगा... फिर उसके दो छोटे-छोटे बच्चों को कौन सँभालेगा ? उसकी चिन्ता स्वाभाविक थी। डॉक्टर्स ने उसकी और बच्चों की भी जाँच की थी, लेकिन बताया कुछ नहीं था। वह चाहती थी कि मैं सारी रिपोर्ट्स को पढ़कर देखूँ कि उसमें लिखा क्या है। मैंने उससे कहा कि वह सारी रिपोर्ट्स लेकर आ जाय।

संयोग अच्छा था कि उसे या उसके बच्चों को एड्स नहीं हुआ था। मैंने उसे बताया तो वह तनिक निश्चिंत सी लगी और कुछ आवश्यक मेडिकल परामर्श के बाद चली गई।

बहुत दिन बाद एक दिन फिर उसका फोन आया, इस बार उसने जो बताया वह और भी दुःखद था। इतने साल बाद स्वयं को उसके पति की असली पत्नी बताने वाली कोई महिला सम्पत्ति के बँटवारे के लिए आ धमकी थी। लड़की का रो-रो कर बुरा हाल था। फिर भी उसे अपने दिवंगत पति से कोई शिकायत नहीं थी। वह स्वयं को ही दोष देती रही कि यदि वह सुन्दर होती तो उसका पति कहीं और भटकता ही क्यों। सुनकर मैं द्रवित हो उठा था।

इस बार सरस्वती पूजा के अगले दिन स्कूल के लोगों ने पिकनिक का कार्यक्रम बनाया था। साथ के शिक्षक-शिक्षिकाओं ने पिकनिक के लिये किसी तरह उसे भी मना ही लिया। जब सब लोग पिकनिक स्पॉट पहुँचे तो पहाड़ी झरने के पास सरसों के खेत देखते ही वह मचल उठी... उसकी आँखों में चमक आ गई। कई बरस के बाद लड़की फिर से ज़िन्दा होने लगी।

मरी हुयी लड़की ने, जो अब फिर से ज़िन्दा हो गई थी, सरसों के खूब सारे फूल चुन कर अपने दुपट्टे में रखे, सेमल कन्द उखाड़ा और चने की हरी-हरी पत्तियाँ तोड़कर चबाईं। निष्ठुर समय का एक छोटा हिस्सा आज उस पर तनिक मेहरबान था।

अचानक यादों का एक साया उड़ता हुआ आया और लड़की को ढक दिया। लड़की फिर से शव बन गयी, उसके होठ बुदबुदाये – "तू क्यों आया रे बसंत ! वो तो हैं नहीं अब"।

लड़की ने दुपट्टे के सारे फूल एक जगह गिरा दिए... फिर वहीं ज़मीन पर बैठकर दुपट्टे का छोर मुँह में दबा, सिर झुकाकर फूट पड़ी।

***

८. कलियुग में भी

आगरा से जयपुर राष्ट्रीय राजमार्ग पर है भरतपुर । हाँ, वही... पक्षियों वाला भरतपुर । कभी मथुरा से दिल्ली जाते समय ट्रेन में लोकल लड़कों के मुँह से यह गाना सुना था -भरतपुर लुट गओ रात मोरी अम्मा... । लड़कों का समूह मजे ले-लेकर गाना गा रहा था ।

उसी राष्ट्रीयराजमार्ग पर लड़के की कार भागी चली जा रही थी । लड़के को जयपुर जाना था लेकिन भरतपुर रुकते हुये । अचानक लड़के को लगा कि शायद वह आगे निकल गया है । सामने थोड़ी दूर पर एक गाँव था, उसने रास्ता पूछने की ग़रज़ से गाड़ी धीमी की । गाड़ी धीमी करते ही एक लड़की सड़क के किनारे आ गयी, लगा जैसे कि वह लिफ़्ट चाहती हो । लड़की ने, जो कि अभी पूरी तरह लड़की भी नहीं बन पायी थी, गहरा मेकअप किया हुआ था जिससे उसका प्राकृतिक सौन्दर्य बुरी तरह नाराज़ था । पता नहीं उसने मेकअप किया ही क्यों था जबकि वह बला की ख़ूबसूरत थी ।

गाड़ी के धीमी होते ही लगभग तीस की उम्र का एक युवक भी सड़क पर सामने आ गया । युवक ने लड़के को सलाम करते हुये आमंत्रित किया – "आइये सर" !

लड़के ने पूछा – "भरतपुर आगे है क्या" ?

युवक ने बड़ी विनम्रता से कहा – "नहीं सर ! वह तो आप पीछे छोड़ आये हैं... तीन-चार किलोमीटर पीछे । जहाँ से आप मुड़े हैं वहीं से सीधे जाकर बस... भरतपुर ही है, ... एक बार उतर कर आइये न सर" ! – युवक ने फिर आमंत्रित किया ।

अब तक बला की ख़ूबसूरत लड़की भी गाड़ी के पास आ गयी थी । उसने आधुनिक कपड़े पहन रखे थे... यानी तंग और छोटे । लड़की के कपड़े इतने छोटे थे कि कारपोरल स्क्रिप्ट के बेहतरीन नज़ारे के प्रदर्शन के लिये उसे तनिक भी झुकने की आवश्यकता नहीं थी । लड़की ने अनारकली स्टाइल में मुस्कराते हुये आदाब किया, फिर एक शोख़ अदा के साथ हाथ के इशारे से लड़के को आमंत्रित किया ।

सड़क के किनारे एक झोपड़ीनुमा चाय की दुकान पर खड़ी दो युवा और एक अधेड़ होने की ढलान पर उन्मुख स्त्री ने हाथ के इशारे से लड़के को इशारा किया । लड़के के, जो कि वाकई किसी लड़के की उम्र से आगे एक गबरू मर्द की श्रेणी का मानुष हो चुका था, विशेष ज्ञानचक्षु उन्मीलित हो चुके थे । उसने अपनी गाड़ी मोड़ी और भरतपुर की ओर भाग गया । उसने बेड़िया जैसी कुछ जातियों के पुश्तैनी धन्धे के बारे में पढ़ रखा था, अंदाज़ लगाया कि शायद उन्हीं लोगों का गाँव रहा होगा ।

भरतपुर पहुँचकर लड़के ने सबसे पहले एक होटल की शरण ली और एक ब्लेक कॉफ़ी का ऑर्डर दिया। काली पेण्ट, सफ़ेद बुर्राक शर्ट और गले में लाल टाई पहने एक सुन्दर सी लड़की कॉफ़ी लेकर आयी तो गबरू मर्द की उम्र वाले लड़के को फिर एक झटका लगा – अयँ... यहाँ भी बेड़िनी !

लड़की ने टेबल पर कॉफ़ी रखी और एक एथिकल मुस्कुराहट फेक कर चली गयी। लड़का अब तक पूरी तरह एक तूफ़ान की ज़द में आ चुका था। उसके सामने दो लड़कियों के चेहरे थे – एक बला की ख़ूबसूरत और दूसरी केवल ख़ूबसूरत। एक जो अभी तक लड़की भी नहीं बन पायी थी और दूसरी जो अच्छी तरह लड़की बन चुकी थी। एक जो कारपोरल बिज़नेस में उतर चुकी थी और दूसरी जो एक मध्यम श्रेणी के होटल में वेट्रेस बन चुकी थी। एक लड़की सवाल थी जबकि दूसरी लड़की उसी सवाल का ज़वाब थी। तूफ़ान तेज़ होता गया तो लड़के को लगा कि अब उसे कुछ करना होगा।

थोड़ी देर बाद तूफ़ान की ग़िरफ़्त में आ चुका लड़का मात्र बीस की स्पीड में गाड़ी चलाता हुआ उस बला की ख़ूबसूरत लड़की के गाँव में पहुँच गया। बीस की स्पीड ने उसे कुछ और सोचने-समझने का मौका दे दिया था।

लड़का गाँव पहुँचा तो वहाँ कुछ और चेहरे थे ...नयी बेड़िनियाँ। तो क्या पहले वाली बेड़िनियों की बुकिंग हो चुकी थी ! लड़के की निगाहों ने इधर-उधर टटोलने की कोशिश की लेकिन वह बला की ख़ूबसूरत लड़की उसे कहीं नज़र नहीं आयी।

लड़के के भीतर का तूफ़ान कुछ और तेज़ हो गया। लड़का गाड़ी से उतरा तो लिपे-पुते चेहरे वालियों से घिर गया। उसने पहले वाली लड़की के बारे में पूछा तो सब खिलखिला उठीं, बोलीं – "हम भी तो हैं..."।

लड़कियों से घिरा लड़का मकड़ी के जाल में फ़ँस चुका था... मुक्ति का कोई उपाय नहीं बचा। एक लड़की उसे अपने साथ ले जाने में सफल हो ही गयी।

एक छोटे से कमरे में जाकर लड़की ने एक लीथल अँगड़ायी लेते हुये पूछा – "सर ! चाय लेंगे या कॉफ़ी" ?

लड़के ने कहा, अभी-अभी कॉफ़ी पी है, मुझे कुछ नहीं चाहिये।

लड़की एक तरह से खींचती हुयी सी लड़के को पलंग तक ले गयी और लगभग उसके ऊपर गिरते-गिरते बोली – "ऐसे-कैसे सर ! कुछ तो चाहिये..."।

लड़के ने स्पष्ट महसूस किया जैसे उसके शरीर में बिजली दौड़ने लगी हो। लड़का फ़िज़िक्स वाला था, सोचने लगा – कितने वोल्ट का करेण्ट होगा यह ?

लड़का शून्य जैसा होता जा रहा था, उसने आर्त स्वर में विनती की – "क्या आप मेरे साथ बाहर चलेंगीं... मेरा मतलब है खेतों की तरफ़..." ?

लड़की को यह कस्टमर कुछ अज़ीब सा लगा, पूछा – "क्यों ? यहाँ ठीक नहीं लग रहा क्या ? कोई परेशानी है" ?

लड़के ने कहा – "मैं शहर से आया हूँ, आपका गाँव देखना चाहता हूँ... और खेत भी"।

लड़की को अब पक्का विश्वास हो गया कि लड़का बड़े बाप का सिरफिरा बेटा है। उसने व्यापारिक चतुरता का दाँव चलते हुये कहा – "देखिये मैं जितना अधिक समय आपको दूँगी मेरा उतना ही नुकसान होगा... आप समझ रहे हैं न ! आप मेरे साथ अधिक समय गुज़ारना चाहते हैं तो उस नुकसान की भरपायी तो करनी होगी न" !

लड़के ने तुरंत ज़वाब दिया – "ठीक है, भरपायी हो जायेगी। चलो चलते हैं..."।

लड़की अब सीरियस हो गयी, कुछ सोचकर बोली – "ठीक है आप काका जी से बात कर लीजिये"।

काका जी ने पहले तो साफ मना कर दिया लेकिन फिर बड़ी ना-नुकुर के बाद ऊँचे दाम पर सौदा तय कर लिया। पूरे एक दिन और एक रात का सौदा हुआ।

लड़की आज खूब ख़ुश थी... दस कस्टमर बराबर एक कस्टमर और साथ में घूमना-फिरना भी। लड़के ने भी चैन की साँस ली।

लड़के ने उस छोटे से गाँव की गलियों में घूम-घूम कर जायज़ा लिया... फिर खेतों की मेड़ों से होता हुआ दिन भर घूमता रहा। उसने लड़की से बहुत सारी बातें कीं, पूछा कि वह कहाँ तक पढ़ी है ? पाँचवीं के बाद आगे पढायी क्यों नहीं की ? उसके कितने भाई बहन हैं ? वह कुछ और काम क्यों नहीं करती ? खाने में उसे क्या-क्या अच्छा लगता है ? कौन-कौन से शहर देखे हैं ? बुढ़ापे की योजनायें...।

रात हुयी तो लड़की ने किंचित संकोच से पूछा – "खाना बाहर खायेंगे... या..." ?

लड़के ने कहा – "आप ख़ुद बनायेंगी तो यहीं खा लूँगा... वरना बाहर"।

लड़की का संकोच और भी बढ़ गया, बोली – "घर का खाना... खा लेंगें आप" ?

"हाँ ! क्यों नहीं... हम तो रोज ही घर का बना खाना खाते हैं"।

उत्तर सुनकर लड़की हँस दी। भोजन को लेकर अब वह सहज हो गयी थी। उसे यह सिरफिरा कस्टमर अच्छा लगने लगा था। उसने पूछा – "क्या बनाऊँ आपके लिये" ?

लड़के ने कहा – "कुछ भी... जो आपको अच्छा लगता हो"।

अचानक लड़की को लगा कि जैसे उस सिरफिरे कस्टमर ने लड़की के भीतर एक आँधी चला दी हो। वह उस आँधी में उड़ने लगी... सूखे पत्ते जैसी।

भोजन बनकर तैयार हुआ तो लड़की थाली ले कर आयी। लड़के ने कहा – "सब लोग एक साथ खायेंगे... आपके काका जी, माँ, दादी और भाई... सब लोग"।

लड़की असमंजस में पड़ गयी, यहाँ तो ऐसा कभी नहीं होता, जब जिसको समय मिला खा लिया। वह बोली – "पहले आप खा लीजिये, घर के लोग बाद में खा लेंगे"।

लड़का मानने को तैयार नहीं। आख़िर में काका जी और लड़की को उसके साथ बैठना ही पड़ा। भोजन के बाद काका जी जाने लगे तो लड़के को याद दिलाया कि कल दोपहर को उसके चौबीस घण्टे पूरे हो रहे हैं।

लड़की ने आज पलंग पर नयी बेडशीट बिछायी और तकिया पर धुले हुये कवर चढ़ा दिये। जब सोने का समय आया तो भीतर चल रही आँधी से लड़की थरथरा उठी। लड़के ने लड़की से कहा कि वह माँ के पास जाकर सो जाय। लड़के का प्रस्ताव सुनकर लड़की के भीतर की आँधी और तेज़ हो गयी। उसे लगा जैसे कि वह पूरे दाम लेकर भी कस्टमर को खाली हाथ वापस भेजे दे रही है।

उसकी व्यावसायिक हुलस और धार कुन्द होने लगी थी फिर भी उसने धीरे से कहा – "आपने तो काका जी को पूरे पैसे दिये हैं... वह भी चौबीस घण्टे के लिये"।

अंततः दोनों एक साथ सोये तो लड़के के दिमाग़ में फ़िज़िक्स लहरा उठी। पहली बार उसे पता चला कि फ़िज़िक्स और फ़िज़ियोलॉजी में कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है। अपने शरीर में प्रवाहित हो रहे हज़ारों वोल्ट के करेण्ट का प्रतिरोध करने में लड़के को बड़ी मानसिक मशक्कत करनी पड़ी। लड़के ने तो करेण्ट का प्रतिरोध करने में ऐन-केन प्रकारेण सफलता पा ली लेकिन लड़की के भीतर की आँधी अब तक तूफ़ान में बदल चुकी थी। यह तूफ़ान सतरंगा था... सतरंगे तूफ़ान पर सवार होकर वह किसी और ही लोक में पहुँच चुकी थी।

सुबह हुयी तो चाय पीते-पीते सिरफिरे लड़के ने लड़की से कल वाली बला की ख़ूबसूरत लड़की के बारे में पूछा। लड़की को जैसे झटका लगा, अच्छा तो इस ब्रह्मचर्य के पीछे का राज यह है। एक झटके में लड़की का तूफ़ान थम गया। उसे बला की ख़ूबसूरत लड़की से ईर्ष्या हुयी और सिरफिरे लड़के पर रोष। उसने ज़वाब दिया – "काका जी से पूछ लेना उसका घर"।

लेकिन लड़के ने काका जी के साथ जाने से मना कर दिया। लड़की को उसके साथ जाना ही पड़ा।

अभी-अभी तेरह पूरी करके मात्र चौदहवें साल में पड़ी वह बला की ख़ूबसूरत लड़की अभी-अभी स्नान करके आयी थी। आज बिना मेकअप के वह और भी बला की लग रही थी। रात वाली लड़की लड़के को वहीं छोड़कर जाने लगी तो लड़के ने उसे भी रोक लिया। उसने हँसते हुये चुटकी ली – "अभी चौबीस घण्टे पूरे नहीं हुये हैं"।

रात वाली लड़की को पहली बार लज्जा की अनुभूति हुयी। उसके कान के लोब्स लाल हो गये। बहुत मन हुआ कि कह दे – "ऐसे कस्टमर के साथ तो कोई जीवन भर रहे तो भी चौबीस घण्टे पूरे नहीं हो पायेंगे"।

लड़की कुछ नहीं बोली।

आगरा से जयपुर को निकला लड़का भरतपुर के पास एक छोटे से गाँव में तीन दिन से हिलगा हुआ था। इस बीच गाँव के लोगों के साथ उसकी चार बार मीटिंग्स हुयीं। मीटिंग्स में बहसें हुयीं। बहसों

में कभी उत्तेजना हुयी कभी निराशा हुयी, कभी असहयोग की आँधी तो कभी सहयोग की बयार बही... और अंततः लड़के की जीत हुयी। तय हुआ कि गाँव में शिक्षा और चिकित्सा की व्यवस्था में लड़का जो कुछ भी करेगा उसमें गाँव के सभी लोग उसका सहयोग करेंगे।

चौथे दिन जब लड़का पुनः ज़ल्दी ही वापस आने का वादा करके वहाँ से जाने लगा तो उसके पैर छूने के लिये लोगों में होड़ सी लग गयी। लड़की की माँ ने पास आ कर लड़के के हाथों में वे सारे नोट थमा दिये जो उसने हर चौबीस घण्टे के लिए तीन दिन में काका जी को दिये थे। लड़का मना करता रहा पर लड़की की माँ नहीं मानी। काका जी ने आकर कहा – "ले लो बेटा" ! तब लड़के ने यह कहते हुये नोट ले लिये कि यह रकम लड़की की अमानत के रूप में उसके पास रहेगी।

बला की ख़ूबसूरत लड़की ने आज पूरे कपड़े पहने हुये थे, यानी सलवार सूट... और मेकअप भी नहीं किया था। सिरफिरे लड़के ने तीन ही दिन में ने न जाने कितनों पर जादू कर दिया था। लड़की पास आकर सिरफिरे के पैर छूने के लिये झुकी ही थी कि उसने उसे उठाकर अपने सीने से लगा लिया। लड़की की आँख़ें नम हो आयीं तो सिरफिरा बोला – "तुम मेरे स्कूल की पहली स्टूडेण्ट बनोगी"।

रात वाली लड़की पास तक नहीं आयी, दूर ही खड़ी रही। उसकी आँखें पहली बार किसी कस्टमर के लिये बादल की भूमिका में पूरी ईमानदारी के साथ न्याय कर रही थीं।

गाड़ी में बैठने से पहले सिरफिरे लड़के की आँखों ने रात वाली लड़की को खोज ही लिया। वह लड़की के पास आया तो उसने अपना चेहरा आँचल से ढक लिया। सिरफिरे लड़के ने उसके सिर पर जैसे ही हाथ रखा तो वह उसके पैरों पर भरभरा कर ढेर हो गयी।

ऊपर से ईश्वर ने आश्चर्य से देखा कि कलियुग में भी एक गन्दी लड़की पवित्र हो रही थी।

ठीक उसी समय सिरफिरे लड़के के मोबाइल फ़ोन की रिंग टोन बज उठी – तमसोमा ज्योतिर्गमय ...मृत्योन्मामृतं गमय .....

***

९. खजूर थी नीम हो गई

दूसरी कोपल कब फ़ूट गयी पता ही नहीं चला, उस समय तो मैं कोमल कोपल के स्पर्श की सुखद अनुभूति में डूबती उतराती रही थी । कोपलें बढ़ती गयीं और उनके झूमने से जो सुखद बयार बही उसने मुझे एक मोहक स्वप्न लोक में पहुँचा दिया था । सम्मोहित सी मैं स्वप्नलोक में भ्रमण करती रही... दुनिया की रीति-नीति से भिज्ञ होकर भी अनभिज्ञ बनी रही और जब होश में आई तब तक मैं खजूर से नीम हो चुकी थी । खजूर अब मुझसे खाया नहीं जाता और नीम मुझसे छोड़ा नहीं जाता । उफ़्फ़ ! जाने किस घड़ी में फूटी थी वह कोपल !

रीति है खजूर होने की... नियति है नीम होने की । नारी की यह कथा किसी त्रासदी से कम है क्या ?

हाँ ! मैं इसे त्रासदी ही कहूँगी । क्यों न कहूँ ? माना कि मीठा है खजूर, पर तीक्ष्ण पत्तियों की चुभन ? इस चुभन को अपनी नियति कैसे मान लू... क्यों मान लूँ मैं ? नीम होने में बुराई ही क्या है जो उसकी छाँव को छोड़ दूँ ? नीम कड़ुवा है तो क्या, उसने कब बुरा चाहा है किसी का ?

बचपन से सुनती आई थी, दृष्ट जगत् के सारे व्यापार किसी स्वप्न से अधिक कुछ नहीं । मनीषियों के लिये जगत् स्वप्न है और मेरे लिये मेरा स्वप्न ही मेरा जगत् था । मेरे लिये तो मेरा स्वप्न भी अस्तित्ववान था पर उनके लिये ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या । इन दोनों बातों में अंतर होगा, वे दार्शनिक होंगे । पर मैं तो सांसारिक हूँ और मेरे लिये जो दर्शनीय था वही दृष्टव्य था, और जो दृष्टव्य था वही दर्शन था । मैं, मेरा स्वप्न और मेरा संसार सब एकाकार हो गये थे । इस दर्शन की अवहेलना कैसे कर पाती मैं ?

हाँ ! स्वप्न ही तो देखा था मैंने... अंतर्जाल की आधुनिक आभासी दुनिया का स्वप्न । वह कविता बन कर आया था... मुझे हौले से स्पर्श किया था । उसकी हर कविता उतरती चली गई... पहले मस्तिष्क में फिर हृदय में । कवितायें अभी भी वहीं बैठी हैं... वहाँ से हटने का नाम ही नहीं लेतीं । एक दिन साहस किया मैने और उसके चिट्ठे (ब्लॉग) पर एक टिप्पणी लिख अपना हाथ बढ़ा दिया आगे । हाथ बढ़ा तो टिप्पणियों का आदान-प्रदान भी प्रारम्भ हो गया ।

टिप्पणियों का आदान-प्रदान कब चिट्ठियों में रूपांतरित हो गया यह पता ही नहीं चला । अपने सुलझे हुये और उत्कृष्ट विचारों से निश्चल ने मेरे मन-मस्तिष्क में अपनी एक सौम्य और निश्छल छवि निर्मित कर ली थी । वैचारिक साम्यता की नदी के प्रवाह में उतरने में समय नहीं लगा हमें । न जाने कब उसने विचारों की एक पोटली थमा दी थी मुझे । मैं अचम्भित थी... सम्मोहित थी ।

पोटली मुझे मथे जा रही थी... मथे जा रही थी । विचार ऐसे भी हो सकते हैं... इतने परिष्कृत... इतने उदार... इतने मधुर... इतने आकर्षक... इतने ऊर्जावान... इतने सम्मोहक...!

विचारों की एक पोटली मेरे पास भी थी... पहले से ही । बचपन से तिनका-तिनका सँजोकर बनायी पोटली ससुराल में आकर और भी समृद्ध हो गई थी... किंतु कितना अंतर था इन दोनों पोटलियों में

! पहले वाली पोटली लेकर चलने में जो असुविधा थी वह इस नयी पोटली में नहीं थी। इसके साथ मैं मुक्त गगन में उड़ सकती थी... वह भी अपने स्वयं के अस्तित्व को खोए बिना।

अस्तित्व ! दुनियादारी की सारी माया इसी अस्तित्व को ही लेकर तो है। सभी संघर्षों के मूल इसी अस्तित्व की रक्षा प्रक्रिया में समाये हुए हैं। परम्परा भी यही रही है कि मैं अपना अस्तित्व उनके अस्तित्व में विलीन कर दूँ। करने का प्रयास भी किया किंतु सुमित से विवाह के इतने वर्षों बाद उस दिन सुविधा-असुविधा की तुलनात्मक समीक्षा ने पहाड़ सी एक दुर्गम समस्या खड़ी कर दी थी।

पता नहीं यह संयोग मेरा दुर्भाग्य था या सौभाग्य कि राष्ट्र और समाज की विकास प्रक्रिया में पुरुष की तरह मैं भी अपनी किंचित सहभागिता सुनिश्चित कर आगे बढ़ चली थी। किंतु इस सहभागिता के बाद भी मैं पुरुष की वर्चस्वपूर्ण मानसिकता की शिकार होने से स्वयं को बचा नहीं सकी कभी। सात फेरे लेकर भी मैं सुमित की अर्धांगिनी नहीं बन सकी... सहचरी नहीं बन सकी। हाँ ! सम्पत्ति अवश्य बन सकी, सम्पत्ति... जो भोग्या होती है और जिसका एक स्वामी होता है। मन में भोग्या होने का विचार आते ही अन्दर ही अन्दर पीड़ा की एक तीव्र लहर सी उठती थी और मैं पछाड़ खाकर गिर जाती थी। चोट लगती थी तो पीड़ा और भी बढ़ जाती थी।

निश्चल ने पंख खोलना सिखाया था मुझे... मैं उड़ना चाहती थी... जानना चाहती थी कैसा लगता है मुक्त गगन में उड़ान भरते हुए। किंतु मायके से लाई हुई पोटली को सुमित ने और भी भारी बना दिया था... उससे मुक्ति कैसे हो पाती ?

मन जहाज के पंछी की तरह विकल था... विवश था... मुक्त होने का प्रयास करता था... फिर वापस आ जाता था। मुझे अपना घूँघट थोड़ा ऊपर खींचना पड़ा। अब लैप-टॉप मेरे सामने था और मैं लैप-टॉप के की-बोर्ड पर अपनी उँगलियाँ रोक नहीं पा रही थी, उँगलियों ने आज्ञा का पालन करना प्रारम्भ किया -

दोपहरी में चढ़ी अटारी
तन-मन हारी
घोंप हृदय में एक कटारी
घूम रही हूँ... घूम रही हूँ...
चाँद दूर है सूर्य निकट है
शीतल छाया की आशा में
झुलस रही हूँ... झुलस रही हूँ...

उँगलियों ने बटन को दबाया और निश्चल को लिखी पहली चिट्ठी अंतर्जाल की माया ले उड़ी। अब उत्तर की प्रतीक्षा में विकल हो मैं अन्यमनस्क हो उठी थी। निश्चल कहीं अन्यथा न ले ले।

कई दिन हो गए, निश्चल का कोई उत्तर नहीं आया। मन में उठी व्यग्रता भी व्यग्र हो उठी। अब मुझे अपना चिट्ठी लिखना ही बचकाना सा लगने लगा था पर अब क्या हो सकता था, तीर तो छूट चुका था।

परम्परावादी पतिदेव को आधुनिक चीजें लेश भी अच्छी नहीं लगतीं, और मेरा लैप-टॉप तो जैसे उनका शत्रु ही था सो रात में उनके सोने के बाद ही उसे प्यार कर पाती थी । उस दिन जैसे ही खोला तो यंत्रजाल की पत्रमंजूषा में निश्चल के नाम की चिट्ठी देखकर मेरी तो जैसे धड़कन ही बढ़ गई । खोलने का साहस नहीं हुआ । यंत्रपटल को आवृत कर उठ गई । सोने का प्रयास किया पर आँखों में नींद कहाँ ? बहुत देर तक शय्या पर छटपटाने के बाद फिर उठ बैठी । पैर यंत्रवत लैप-टॉप की ओर बढ़ते चले गये, किसी तरह यंत्र के पट पुनः अनावृत किये और अंत में पत्रमंजूषा भी .....

की-बोर्ड पर क्लिक करते समय अचानक ही पलकों ने आँखों पर पहरा देना प्रारम्भ कर दिया था, किसी तरह पहरेदारों को भी मनाया । अब आँखें जो पढ़ पा रही थीं वह कुछ यूँ था-

चाँद चाँद है
सूर्य सूर्य है
दोनों के संग क्यों उलझन है ?
शीत-ताप
सब अटल सत्य है
सुख-दुःख दोनों स्वीकारो तो
जीवन का पल-पल स्वर्णिम है।

थमी हुयी श्वासों ने अपनी राह पकड़ी... सशंकित हृदय ने अपनी स्वाभाविक गति पकड़ी... मन शांत हुआ और मैने ईश्वर को कोटि-कोटि धन्यवाद दिया कि निश्चल ने कुछ अन्यथा नहीं समझा ।

बाद में मैने अनुभव किया कि इतना होने पर भी सब कुछ स्वाभाविक और सामान्य नहीं था । जहाज का पंछी एक निश्चित् दिशा में उड़ जाने के लिये व्यग्र होता जा रहा था । बचपन से लादी गई खोखले संस्कारों की पोटली को सिर से उतार फेकने के लिये मन बेचैन था ।

कॉलेज के दिनों में लड़कों को लेकर किसी भद्र लड़की की मानसिकता बड़ी विचित्र होती है । स्वयं के सजने-सँवरने में तो कोई कमी नहीं होती, राह में कोई पलट कर देख ले तो मन "हुँह... लफ़ंगा कहीं का" की उपाधि वाला एक प्रमाण पत्र देने में लेश भी देर नहीं करता । कोई न देखे तो मन उदास हो उठता है – "सजने-सँवरने में इतना समय व्यर्थ ही जाया किया... कोई देखता तक नहीं"।

निश्चल के प्रति आज मेरा भी मन कुछ ऐसा ही हो रहा था- "अच्छा ! तो बड़े साधु बन रहे हैं आप ! किसी स्त्री के हृदय को इतना भी नहीं जान सकते कि वह चाहता क्या है"।

मैंने अनुभव किया, शायद मैं बहकने लगी थी । मन तो संस्कारित था मेरा पर हृदय...? वह किसकी मानता है भला !

उफ़्फ़ ! यह कैसा नाता बन गया था निश्चल जी आपसे मेरा । अंतर्जाल की आभासी दुनिया का नाता... जो स्वयं में कतई आभासी नहीं है । सच ही तो... निश्चल के अस्तित्व ने मेरे मन-प्राण-हृदय को अन्दर तक प्रभावित कर दिया था इस सत्य की उपेक्षा मैं कैसे कर सकती थी भला !

और सुमित ? उनकी याद आते ही पीड़ा और भी गहरी हो उठती थी, रोने-रोने का मन हो आता था मेरा। एक सीधे-सादे किंतु परम्परावादी भद्र पुरुष। बौद्धिक प्रवीणता में निश्चल के सामने कहीं नहीं ठहरते पर इसमें दोष ही क्या उनका ?

तो क्या सुमित के प्रति मेरे प्यार और समर्पण में कुछ न्यूनता होने लगी थी ? क्या निश्चल के प्रति मेरा आकर्षण बढ़ता जा रहा था ? ओह ! कितना उलझन भरा आत्मावलोकन था यह... कितना पीड़ादायक भी। सुमित ! मेरे प्रिय सुमित ! मैं तुम्हें खोना नहीं चाहती...। और निश्चल ? तुम तो मेरे स्वप्न हो निश्चल ! कोई अपने स्वप्न को कैसे टूट जाने देगा ?

नहीं... मन का भटकाव है यह। ऐसी ही स्त्रियाँ तो व्यभिचारिणी हो जाती हैं। तो क्या व्यभिचारिणी होने के बीज अंकुरित हो रहे थे मेरे अन्दर ? शायद हाँ , तभी तो मैने आज तक कभी निश्चल के बारे में बताया नहीं सुमित को। मुझे डर था कि वे हमारे इस अनाम रिश्ते को स्वीकृति नहीं देंगे कभी। तो क्या यह छल नहीं था... अपने सर्वस्व से छल ?

अपनी उलझन मुझे संयोगिता के सामने रखनी पड़ी। पहले तो उसने निश्चल को लेकर खूब परिहास किया, जी भर रुलाने के बाद फिर सुझाव दिया, बोली –"पति परमेश्वर नहीं हो सकता रागिनी ! परमेश्वर तो सबका केवल एक ही है। तुम्हारा उत्तरदायित्व उसी परमपिता परमेश्वर के प्रति है। सुमित यदि स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों को केवल एक ही दृष्टि से देख पाते हैं तो उन्हें अपने अन्य किसी रिश्ते के बारे में बताने की आवश्यकता ही क्या है ? भले ही वह पवित्र रिश्ता ही क्यों न हो। अनावश्यक सन्देह तुम्हारे दाम्पत्य सम्बन्धों में आग लगाने के लिये पर्याप्त है। तुम्हें इतना छल करना ही होगा... और सच पूछो तो यह छल है भी नहीं रागिनी ! किसी पुरुष की पत्नी होने के अतिरिक्त क्या स्त्री का और कोई अस्तित्व नहीं होता ? पत्नी होने से पहले तुम एक स्त्री भी हो और तुम्हारा अपना एक स्वतंत्र अस्तित्व भी है यह मत भूलो। जहाँ तक निश्चल के प्रति तुम्हारे आकर्षण की बात है तो इसमें बुरा ही क्या है ? दोष व्यभिचार में है... किसी से प्यार करने में नहीं... और यह अच्छी तरह समझ लो कि प्यार "प्यार" होता है उसे व्यभिचार नहीं कहते। और प्यार सदा पवित्र ही होता है"।

विषाद के बादल उस समय तो छट गये पर उमड़-घुमड़ कर फिर आ गए। बचपन के दिए गये संस्कार गहरे होते हैं उनका प्रतिसंस्कार इतना सरल नहीं होता। यह एक प्रकार की शल्य चिकित्सा ही है जिसमें पुराने संस्कारों के स्थान पर नये संस्कार प्रत्यारोपित करने होते हैं, प्रत्यारोपण का पीड़ादायी होना स्वाभाविक है, उसका परिणाम कितना भी सुखद क्यों न हो।

मैंने व्यथित हो एक बार फिर निश्चल को चिट्ठी लिख कर अंतर्जाल को थमा दी। इस बार प्रश्न सीधा-सीधा था, मैने लिखा – "हम पिछले छह वर्षों से आपस में विचारों का आदान-प्रदान और पत्र-व्यवहार करते आ रहे हैं, यह बात अभी तक सुमित को नहीं मालूम। मुझे लगता है कि मैं सुमित से छल कर रही हूँ। अपने मन से इस बोझ को उतारना चाहती हूँ पर तब भय है कि मुझे आपको खोना पड़ेगा...

और मैं आपको खो कर अपने अस्तित्व की हत्या नहीं करना चाहती । क्या करूँ कि पति के प्रति सच्ची निष्ठा भी बनी रहे और आपसे मेरा यह ख़ूबसूरत अनाम रिश्ता भी"?

निश्चल ने इस बार देर नहीं की, तुरंत उत्तर दिया – "रागिनी जी ! जहाँ सन्देह की स्थिति निर्मित होने की सम्भावना हो वहाँ आभासी दुनिया के अनाम सम्बन्धों की बलि देना ही श्रेयस्कर है"।

निश्चल ने वही उत्तर दिया था जो किसी सुलझे हुये व्यक्ति को देना चाहिये था । किंतु जब संयोगिता को बताया तो वह बिफर उठी –"यह छद्मादर्श पुरुषवादी मानसिकता के अतिरिक्त और कुछ नहीं"।

सारी उठा-पटक के बाद भी अंतिम निर्णय मुझे ही करना था । चोर न होते हुये भी पुलिस से छिपते-फिरने की पीड़ा से मुक्ति पाना अब आवश्यक हो गया था मेरे लिये । निश्चल जी को मन ही मन अंतिम बार प्रणाम करते हुये मुझे स्त्री की हत्या के लिये विवश होना पड़ा था । सुमित, जो कि इस युद्ध में प्रत्यक्ष कहीं नहीं थे, जीत चुके थे और मैं सदा के लिये मर चुकी थी ।

***

१० नारायणपुर की मड़ई का नीलकण्ठ

भीमा सल्फी की हँडिया उतार कर चलने ही वाला था कि उसे जबीता दिखायी पड़ गयी। वह चटनी के लिये जिर्राटोप्पा लेने खेत आयी हुई थी। भीमा इस बार जबीता के साथ नारायणपुर की मड़ई जाना चाहता था। जबीता भी तैयार थी पर वह परेमिन को भी साथ ले जाना चाहती थी जबकि भीमा इसके लिये तैयार नहीं था। वह सल्फी की हँडिया लेकर सीधे जबीता के पास पहुँचा और दो टूक संवाद शुरू कर दिया –

"मड़ई चलना है कि नहीं" ?

"परेमिन का बहुत मन है। साथ चलेंगे तो अच्छा लगेगा"।

"ठीक है, तुम परेमिन के साथ चली जाना मैं पद्मा के साथ चला जाऊँगा"।

भीमा पलट कर जाने लगा तो जबीता ने चाल चली – "नारायणपुर में परेमिन की सहेली है, रात का खाना वहीं खायेंगे, खर्चा बचेगा"।

भीमा ने मुड़कर जबीता की ओर देखा, मुस्कराया और सिर हिलाकर चल दिया। जबीता घर-गृहस्थी जोड़ने के लिये पैसे बचाने में माहिर थी और यही बात भीमा को बहुत अच्छी लगती थी। वह सोचता, थोड़ा-थोड़ा करके बहुत खर्च हो जाता है, पता नहीं चलता। जबीता उसकी घरवाली बनेगी तो ख़ूब पैसे जोड़ेगी। पैसे जोड़ना ज़रूरी है, बच्चे होंगे, उन्हें पढ़ाने-लिखाने के लिये बहुत पैसा लगेगा। रामसाय का बेटा वाल्टेयर में पढ़ता है, बताता है अच्छे कॉलेज में पढ़ाई के लिये बहुत पैसा खर्च करना होता है। जबीता अपने होने वाले बच्चों को बड़ा साहब बनाना चाहती है।

तीनों ने तय किया कि भैंसमुण्डी से निकलकर पहले वे तीनों भानुप्रतापपुर जायेंगे, नई रेल पटरी देखने और फिर वहाँ से बस पकड़कर सीधे नारायणपुर। जबीता उत्साहित थी, नई रेल शुरू होने से इधर रायपुर और उधर जगदलपुर होते हुए वाल्टेयर जाना कितना सरल हो जायेगा। भीमा और जबीता के मन में वाल्टेयर के एक बड़े कॉलेज की बहुत सम्मोहक काल्पनिक छवि थी जहाँ उनके होने वाले बच्चे पढ़कर बड़े साहब बनेंगे।

भानुप्रतापपुर में बड़ी-बड़ी दैत्याकार मशीनें देखकर तीनों को रोमांच हो रहा था। जबीता आज प्रत्यक्ष में जो देख पा रही थी उससे भी अधिक उसे देख पा रही थी जो अप्रत्यक्ष था, यानी रायपुर से जगदलपुर वाली रेल से वाल्टेयर के लिये जाते हुये अपने बच्चों को। परेमिन भौचक थी, कुछ दिन बाद अब यहाँ रेल चलेगी।

नई रेल पटरी देखने के बाद तीनों ने नारायणपुर की बस पकड़ी। बस में जबीता भीमा के पास बैठी और परेमिन एकदम खिड़की के पास। बस में चढ़ने से पहले भीमा ने तीन जूरी चना बूट ले लिया था, रास्ते में खाने के लिये।

मड़ई पहुँचते-पहुँचते शाम के चार बज गये। तीनों ने जल्दी से श्रृंगार किया और एक-दूसरे की कमर में हाथ डाले पहुँच गये मड़ई। परेमिन को चूड़ी-बिन्दी की दुकानें अपनी ओर खींचती थीं, जबीता को आकाश-झूला और भीमा को मड़ई की हर चीज।

बस्तर के मड़ई-मेलों में घूमना किसी उत्सव से कम नहीं होता। लोग महीने भर पहले से तैयारी करते हैं और मड़ई के आसपास के गाँवों में रहने वाले अपने रिश्तेदारों और मित्रों को ख़बर कर देते हैं। रिश्तेदार और मित्र भी खाने-पीने की अच्छी तैयारी करते हैं। मड़ई से लेकर घरों तक उल्लास और मस्ती का आलम रहता है।

आकाश झूले के लिये लोग टूटे पड़ रहे थे। जबीता और भीमा को जिस झूले में स्थान मिला उसमें परेमिन को नहीं मिल सका, उसका मुँह उतर गया। दूसरे और तीसरे झूले में भी स्थान नहीं मिला परेमिन को। चौथे झूले में कुछ स्थान खाली था जिसे देखकर लोग एक-दूसरे को धकियाते आगे बढ़ने लगे। परेमिन को शहरी जैसे दिखने वाले एक अपरिचित जवान के पास बैठने को स्थान मिल सका।

झूले में अपरिचित शहरी जवान परेमिन से एकदम चिपककर बैठा था। परेमिन को अच्छा नहीं लगा लेकिन वह कर भी क्या सकती थी, भीड़ में ऐसी विवशतायें स्वाभाविक हैं, कहाँ तक कैसे बचेगा कोई। शीघ्र ही वह गोठियाने लगा, पूछा – "कौन गाँव से हो" ?

"भैंसमुण्डी, तुम" ?

"भानुप्रतापपुर"।

"सच्ची ! सुबह तो हम गये थे भानुप्रतापपुर, नई रेल पटरी देखने"।

परेमिन उत्साहित थी, पूछा – "तुम्हारा घर वहीं है" ?

"हाँ ! मैं शिक्षाकर्मी हूँ वहाँ"।

परेमिन को अपनी देह से खूब चिपक कर बैठे अपरिचित जवान से अब कोई शिकायत नहीं थी।

झूले में चढ़ते समय भीमा की मण्डली में तीन लोग थे, उतरते समय चार लोग हो गये थे। जो लोग यह नहीं जानते कि बस्तर एक हवा है जिसमें हर तरह की ख़ुश्बू आसानी से मिल जाती है, उन्हें ऐसी हवा से आभिजात्यपूर्ण नैतिकता के अभाव की शिकायत हो सकती है।

देर रात तक नाचा देखने के बाद चारों लोग परेमिन की सहेली सुरसती के यहाँ पहुँचे। पूरा घर उत्सवमय हो गया। सुरसती के भाई ने मुरगा काटा और चाचा ने महुवे के खाँटी मन्द की व्यवस्था की। ऐसे निश्छल अपनत्वपूर्ण व्यवहार की कल्पना उनके लिये कठिन है जो औपचारिकता को सभ्यता का अनिवार्य हिस्सा मान बैठे हैं।

दूसरे दिन की मण्डली में सुरसती और उसका बड़ा भाई भी जुड़ गया। जबीता ख़ुश थी और भीमा हमेशा की तरह सपनों में खोया रहा। सुरसती के भाई ने सबके लिये जलेबी खरीदी और भीमा ने तीनों लड़कियों के लिये रंगीन मनकों वाली माला।

अपरिचित जवान, जो कि अब परिचित हो गया था, परेमिन के साथ सेल्फ़ी लेने की ज़िद कर रहा था। थोड़ी ना-नुकुर के बाद वह तैयार हो गई। परेमिन को वह अच्छा लगने लगा था।

घूमते-घूमते सब थक चुके थे और सुस्ताने के लिये पेड़ के नीचे बैठ गए। जवान ने परेमिन से कहा – "रेल लाइन के लिए ख़ुश होने की ज़रूरत नहीं है। ज़ल्दी ही सबको पता चल जाएगा कि यह कितनी बुरी चीज है"।

परेमिन को आश्चर्य हुआ, और थोड़ा सा डर भी। तो क्या रेल के साथ-साथ बुरी आत्मायें भी यहाँ आने वाली हैं ?

"हे बूढ़ा देव ! हमारे गाँव की रक्षा करना" ! – परेमिन मन ही मन बुदबुदायी।

दूसरे दिन भानुप्रतापपुर वाला अपरिचित जवान परेमिन का परिचित बनकर वापस चला गया। जाते-जाते उसने परेमिन से पूछा – "मिलने आओगी भानुप्रतापपुर" ?

जबीता का मन नहीं भरा था मेले से, वह अभी एक दिन और घूमना चाहती थी। सुरसती और उसके भाई को घर में काम था इसलिये भीमा, जबीता और परेमिन ही रह गये। दिन भर घूमने के बाद जब तीनों एक जगह बैठ कर भजिया खा रहे थे तो अचानक ही कुछ पुलिस वाले आ गए और भीमा को पकड़ कर ले जाने लगे। जबीता और परेमिन ने उनकी बहुत चिरौरी की लेकिन वे नहीं माने। दोनों लड़कियाँ रोने लगीं, वहाँ भीड़ लग गई।

दादा लोगों की बैठक में जाने के कारण भीमा को पुलिस ले गई, जबीता और परेमिन भागे-भागे सुरसती के घर गए और रोते-रोते सारी बात बतायी। सुरसती के भाई ने थाने जाकर पता लगाने का प्रयास किया पर उसे वहाँ से डाँट कर भगा दिया गया। अगले दिन वह एक गुरु जी को लेकर थाने गया। साथ में जबीता, परेमिन और सुरसती भी थीं। परेमिन ने थाने के साहब को बताया कि सबको पता है गाँव में रहना है तो दादा लोगों की बैठक में तो सबको जाना ही पड़ेगा, इसमें नया क्या ? लेकिन इसका मतलब यह तो नहीं कि भीमा माओवादी है।

पूरे दिन वे सब थाने में पुलिस वालों की मनुहार करते रहे। सुरसती के भाई ने घर से मुर्गा लाकर एक पुलिस वाले को दिया। इस बीच पुलिस वाले जबीता से बात करते रहे। तय हुआ कि पूछताछ के बाद शाम तक भीमा को छोड़ दिया जाएगा। दोपहर बाद एक सिपाही अपनी बाइक पर जबीता को बैठाकर किसी साहब के यहाँ ले जाने के लिये निकला।

सिपाही देर रात तक वापस आया, बाइक के पीछे जबीता बैठी थी, जैसे कोई पत्थर। बाइक रुकने के बाद भी जबीता उस पर बैठी ही रही, उसे सुरसती ने पकड़कर उतारा।

थोड़ी देर में भीमा को छोड़ दिया गया। वह पास आया तो जबीता ने उसे पथरायी आँखों से देखा किंतु कुछ बोली नहीं। वह भीमा की मुक्ति के लिये मनचाही कीमत अदा कर चुकी थी।

इस घटना को हुये कई महीने बीत गए। परेमिन अपने भानुप्रतापपुर वाले प्रेमी के साथ जनवादी क्रांति के लिये माओवादी गुट में शामिल हो गई थी। भीमा पुलिस वालों का दुश्मन बन चुका था, उसे दादा लोगों की सहानुभूति मिली और वह हार्डकोर माओवादी बन गया। जबीता गाँव में अकेली रह गयी

। पुलिस वाले कभी-कभी गाँव आकर जबीता से भीमा का पता पूछने आते और दो-तीन घण्टे में निपटकर वापस चले जाते।

परेमिन और उसका प्रेमी अजय अपनी नई दुनिया में ख़ुश थे। उन्हें गर्व था कि वे एक महत्वपूर्ण क्रांति के योद्धा हैं। एक ऐसी क्रांति जिसके बाद बस्तर में केवल अमन-चैन होगा। जंगल और जमीन उनकी होगी। कोई जाति नहीं होगी और सब एक जैसे सम्मान के अधिकारी होंगे।

परेमिन और अजय माओवादी हिंसक घटनाओं में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेते और स्वयं को अपने बाकी साथियों से कहीं अधिक क्रूर और हिंसक प्रमाणित करने का प्रयास करते। किंतु एक दिन यह राज खुल गया कि परेमिन और अजय के बीच कुछ चल रहा है। कमाण्डर ने उन दोनों को समझाया कि क्रांति के काम में प्यार-मोहब्बत और शादी जैसी तुच्छ बातों के लिये कोई स्थान नहीं होता। ज़ल्दी ही उन दोनों को ज़रूरी मिशन के लिये अलग-अलग भेज दिया गया। अजय को दुर्गुकोन्दल और परेमिन को कोण्टा।

कोण्टा जाकर परेमिन कुछ दिन तो जनवादी क्रांति में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेती रही पर ज़ल्दी ही वह एक और क्रांति की शिकार हो गई। वह अच्छी तरह समझ गई कि जनवादी क्रांति के आदर्शों का सत्य स्त्री की देह के साथ किस तरह व्यवहार करता है। उसे बताया गया कि स्त्री-पुरुष सम्बन्धों के लिये विवाह एक अनावश्यक झमेला है। यह दुष्ट मनुवादियों की एक घृणित चाल है जो औरत को उसके अधिकारों से वंचित करती है। उसे यह भी बताया गया कि धूर्त ब्राह्मणों का बनाया यह ज़ालिम समाज पुरुषों को तो चकलाघर जाने से रोक नहीं पाता इसलिये उसका सारा जोर औरत पर ही चलता है। तर्क दिया गया कि यौन सम्बन्धों के लिये जो स्वच्छन्द अधिकार पुरुषों को प्राप्त हैं वे स्त्रियों को भी क्यों नहीं दिए जाते ?

परेमिन यह भी समझ गयी कि जनवाद का एक अर्थ उन्मुक्त भोग भी है।

स्त्री-पुरुष सम्बन्धों के अभी तक रचित तमाम सिद्धांतों के बाद भी स्त्री देह प्राकृतिक मर्यादा की अपेक्षा करती है। इस मर्यादा के टूटने पर देह और मन दोनों को बगावत करने से कोई रोक नहीं सकता। अंततः परेमिन ने भी एक दिन बगावत कर ही दी।

ज़ल्दी ही एक मुठभेड़ में परेमिन को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा। किंतु कोई यह कभी नहीं जान सकेगा कि उसकी मौत पुलिस की गोली से हुयी थी या किसी और की गोली से।

अजय ने पुलिस के सामने आत्मसमर्पण कर दिया है। भीमा पुलिस मुठभेड़ में मारा गया, जबीता गूँगी हो गई है और एक पुलिस वाले साहब के घर में झाड़ू पोंछा लगाने और खाना पकाने से लेकर वह सारे काम करती है जिसकी साहब को आवश्यकता होती है।

इस बार फरवरी में फिर नारायणपुर की मड़ई सजी है। जहाँ मड़ई लगती है उसके पास वाला वह पेड़ सूख गया है जिसके नीचे कभी भीमा, जबीता, परेमिन, अजय, सुरसती और उसके भाई ने बैठकर भजिया और जलेबी खायी थी। बिजली के खम्भे पर अक्सर आकर बैठने वाला नीलकण्ठ भी अब वहाँ नहीं आता।

११. साम्यवादी पूँजीवाद की कहानी

घड़े से निकाला गया सा मुड़ा-तुड़ा पायजामानुमा पतलून, पसीने से भीगे कुर्ते की बद्बू, बढ़ी हुई दाढ़ी, बेतरतीब बाल, सस्ता सा चश्मा, उँगलियों में फँसी सिगरेट, ठेठ भोजपुरी के बीच-बीच में फ़र्राटेदार अंग्रेज़ी का तड़का और वर्गहीन समाज के साम्यवादी दर्शन का काकटेल कुमारी भाग्यश्री शुक्ला के लिए अद्भुत था। पहली भेंट में ही कन्हैया के सम्मोहक व्यक्तित्व ने भाग्यश्री को पागल बना दिया था। इस तरह आभिजात्य परिवार की भाग्यश्री के भाग्य में एक विपन्न मज़दूर के अभी-अभी किशोर से वयस्क हुए बेटे ने प्रवेश किया। यह प्रवेश बिजली के निगेटिव तार से पॉज़िटिव तार के स्पर्श जैसा था जिसमें से निकलने वाली चिंगारी और आवाज़ को रोक सकना असम्भव था।

दूसरी भेंट में जबकि कन्हैया पन्द्रह रुपये वाली थाली के लिए लाइन में अपनी बारी की प्रतीक्षा करते हुये राष्ट्रवाद की नितांत अद्भुत व्याख्या कर रहा था, भाग्यश्री का मन भी पन्द्रह रुपये वाली थाली के लिय एकदम से मचल उठा। उसने देर नहीं लगाई और कन्हैया के ठीक पीछे जाकर खड़ी हो गई। परफ़्यूम की ख़ुश्बू ने कन्हैया को पीछे मुड़ कर देखने के लिये विवश किया तो भाग्यश्री ने मुस्करा कर सिर झुकाते हुये अभिवादन किया। कन्हैया ने आश्चर्य से बस इतना ही कहा – "अरे आप ! यहाँ का खाना खाने जा रही हैं ?"

भाग्यश्री ने जैसे सफाई दी – "भूख लगी थी, कण्ट्रोल नहीं हो रहा था, सोचा आज आप लोगों के साथ ही खा लूँ।"

भाग्यश्री का मन हो रहा था कि वह कन्हैया के कुर्ते से आ रही पसीने की बद्बू को एक बार नाक लगाकर सूँघ कर देखे। उसे यह गन्ध पवित्र लग रही थी जिसमें साम्यवाद के फ़ेरोमोंस मिले हुये थे।

कन्हैया ने काउण्टर पर थाली परोसवाने में भाग्यश्री की मदद की तो वह और भी निहाल हो गई। अपनी-अपनी थाली ले कर जब दोनों मुड़े तो कन्हैया ने ही हाथ से इशारा करते हुये भोजनालय के बाहर नीम के पेड़ के नीचे पड़ी बेंच पर बैठने का संकेत किया। भाग्यश्री हर पल धन्य हो रही थी। उसे लग रहा था कि भारतीय समाज और राजनीति को दिशा देने के लिए एक कृष्ण जन्म ले चुका है जो अब किसी भी दिन कंस का वध करने ही वाला है। कन्हैया को कोई रोक नहीं सकेगा, लाल क्रांति तो अब हो कर ही रहेगी।

भाग्यश्री ने कन्हैया के पसीने की बद्बू सूँघने की अपनी अदम्य इच्छा का दमन किया और अपने भाग्य की ही प्रतीक्षा करना उचित समझकर कोमल मनोभावों को डाँटते हुये एक ओर पटक दिया। कोमल भाव संकोची हुआ करते हैं, इसलिये वे सिर झुकाकर एक ओर बैठ गये।

तीन महीने, मात्र तीन महीने में ही भाग्यश्री कन्हैया ब्रिगेड की महत्वपूर्ण सदस्य बन गई। अपराजिता सान्याल, सुतीर्थो घोष, अलीओसा, चन्दर, अब्दुल्ला, रुकइया और शिवा के. राजू अब उसके अच्छे मित्र बन गए थे। भाग्यश्री के सामने जाति और धर्म की दीवारों को तोड़कर प्रकट हुए इस दल का एक अद्भुत संसार था जहाँ कोई दीवार नहीं थी, कोई खाई नहीं थी, कोई वर्ग नहीं था। वे सब

विश्वसंस्कृति की पताका लेकर पूरे विश्व को एक परिवार बनाने के लिए ढेरों समस्यायों पर बहस करते, ठेले की चालू चाय सुड़कते, एक ही सिगरेट में तीन-तीन लोग कश लगाते और कभी-कभी ढपली बजा-बजा कर क्रांति के गीत गाते। भाग्यश्री को विश्वास हो चला था कि वे लोग एक ऐसी क्रांति के महानायक बनने वाले हैं जो न केवल भारत की बल्कि पूरे विश्व की किस्मत बदल देगी।

किशोरावस्था में अपनी विशिष्ट पहचान स्थापित करने, वर्तमान को चुनौती देने और वर्जनाओं को तोड़ने की अदम्य इच्छा व्यक्तिगत विकास की एक स्वाभाविक स्थिति है जो परिपक्वता और सही मार्गदर्शन के साथ विस्थापित हो जाया करती है। किंतु कुछ लोगों का विश्वास था कि भारत में एक ऐसा भी वर्ग धीरे-धीरे अपने अस्तित्व में आ चुका है जो वयस्कों को किशोरावस्था में ही बने रहने देने के लिये दिन-रात प्रयत्नशील है। विश्वविद्यालयीन शिक्षकों के प्रगतिवादी समूह और अन्य साम्यवादी विचारकों के अद्‌भुत् वक्तव्यों ने विश्वविद्यालयीन छात्र-छात्राओं को एक अनोखी क्रांति का जुझारू एवं आक्रामक सैनिक बना दिया। इन सैनिकों के आदर्श भारत की भौगोलिक सीमाओं से दूर बसते हैं। इनका एक वैचारिक परिवार है जो पूरे विश्व को एक वर्गहीन-जातिहीन-धर्महीन समुदाय मानता है जहाँ समता की नदियाँ बहती हैं। ये ईश्वर को मूर्खों और भाग्यवादियों की कल्पना मानते हैं और धर्म को समाज की वैचारिक अफ़ीम। पुनर्जन्म का कोई वैज्ञानिक अस्तित्व स्वीकार न करने वाले ये सैनिक वर्तमान में जीते हैं और विज्ञान के ज्ञात तथ्यों तक ही दुनिया के सत्य को स्वीकार करते हैं। ग़रीबी और अन्याय इनके प्रिय विषय होते हैं इसलिए सहज जिज्ञासा, लालसा और महत्वाकांक्षाओं के बाद भी पाँचसितारा होटल के भोजन की कटु आलोचनाओं के बीच किसी सस्ते ढाबे के दाल-चावल और चालू चाय में एक आम आदमी की ज़िन्दग़ी के साम्यवादी वैचारिक तड़के के अहं के साथ ही काम चला लेते हैं।

अपराजिता और रुकइया के क्रांतिकारी विचारों और अद्‌भुत् तर्कों ने भाग्यश्री के मन मस्तिष्क में बचपन से बैठे काल्पनिक देवी-देवताओं और पशुयोनि वाले अवतारों के मूर्खतापूर्ण विचारों को विस्थापित कर मार्क्स, लेनिन, स्टालिन और माओ की मूर्तियों को सुस्थापित कर दिया था। भाग्यश्री को विश्वास हो चला था कि भारत के दुर्भाग्य के सबसे बड़े कारण यहाँ के लोगों की मूर्खता और ब्राह्मणों के षड्यंत्र ही हैं। उसे अपने ब्राह्मण परिवार में जन्म लेने की ग्लानि होने लगी थी। वह इस निष्कर्ष पर पहुँच चुकी थी कि इन धूर्त और षड्यंत्रकारी ब्राह्मणों से इस देश को मुक्त किए बिना समाज को प्रगतिशील बनाया जा सकना सम्भव ही नहीं है। अपनी ग्लानि से मुक्त होने के लिये क्रांति का प्रारम्भ करते हुये भाग्यश्री ने दो काम किये, पहला तो यह कि उसने कुमारी भाग्यश्री शुक्ला के स्थान पर कामरेड भाग्यश्री लिखना प्रारम्भ कर दिया और दूसरा यह कि हिंदूवादी वर्जनाओं को तहस-नहस करने के क्रम में सार्वजनिकरूप से गोमांस खाने का निश्चय किया। दूसरा काम कठिन था, शाकाहारी ब्राह्मण परिवार की कन्या के लिये मांसभक्षण करना संस्कारी मन पर कठोर प्रहार से कम नहीं होता किंतु साम्यवादी क्रांति के लिए वर्जनाओं को तहस-नहस करना आवश्यक था। भाग्यश्री ने एक दिन साहस करके अपराजिता और रुकइया के साथ बैठकर इस वर्जना को भी तोड़कर फेंक ही दिया। गोमांस भक्षण के बाद अब वह स्वयं को खाँटी कामरेड कह सकती थी।

आज कॉमरेड दीपंकर महतो के परिवार ने हिंदू धर्म का परित्याग कर इस्लाम धर्म अपना लिया था। इस क्रांतिकारी पर्व को उत्साहपूर्वक मनाने के लिए गोमांस भोज का आयोजन किया गया। शिक्षित युवाशक्ति धर्म को अफ़ीम स्वीकार कर चुकने के कारण धर्मविरोधी थी, किंतु धर्म के प्रति उनका आक्रोश

हिंदूधर्म के लिये ही प्रकट हो पाता था। इस्लाम अपनाते समय कॉमरेड महतो यह भूल गये थे कि वे मात्र धर्मांतरण कर रहे थे, धर्म की अफ़ीम से मुक्ति का उपाय नहीं। एक खुले पार्क में गोमांस भोज का आयोजन किया गया। रुकइया के साथ-साथ भाग्यश्री ने भी बड़े उत्साह से व्यवस्था में भाग लिया। गाय को अपनी अम्मा मानकर पूजने वाले ज़ाहिल पशुतुल्य भगवावादियों द्वारा गड़बड़ी उत्पन्न किए जाने की सम्भावनाओं के कारण पुलिस सुरक्षा की माँग की गयी और कुछ स्थानीय नेताओं को भी आमंत्रित किया गया। कॉमरेड महतो के गोमांस भोज में स्थानीय नेताओं में पंडित रामशरण द्विवेदी, शिवशंकर अय्यर और श्रीमती दीपा बनर्जी के भाग लेने की पूरे शहर में चर्चा रही। भोज में अतिउत्साहित भाग्यश्री ने शीघ्र ही हिन्दूधर्म से स्वयं को मुक्त कर भगवान बाबा साहब की शरण में जाने की घोषणा कर सबको चौंका दिया था।

एक दिन अपराजिता सान्याल और रुकइया में सार्वजनिक गुह्यचर्चा हो रही थी। रुकइया सुन्दर थी... तराशी हुयी सी, ओस में भीगी हुयी सी और किसी बुभुक्ष के लिये ताजी रोटी की उष्णता लिए हुई सी। वह परम्परागत तरीके से विवाह किए जाने के विरुद्ध थी किंतु पुरुष मित्रों के साथ उन्मुक्त सहवास के विषय पर परम्पराओं को त्यागने के पक्ष में नहीं थी। बहस का विषय यही था, साँवली किंतु बड़ी-बड़ी आँखों के बीच उन्नत नासिका वाली अपराजिता सान्याल उन्मुक्त सहवास के पुरुष एकाधिकार को चुनौती देने के पक्ष में थी। उसका तर्क था – "यौनसंबन्धों की गुह्यता मनुवादियों का घिनौना षड्यंत्र है। जो कार्य सर्वस्वीकार्य है, अवश्यम्भावी है, आनन्द का स्रोत है और व्यावहारिक है उसे गुह्य विषय बनाने का क्या औचित्य ? यौनानन्द के लिये पुरुषों की स्वच्छन्दता को उनके पौरुष का प्रतीक मान लिया जाता है जबकि स्त्रियों को उसी कार्य के लिये अपमानित और लांछित किया जाने लगता है। एक ही कार्य के लिये दोहरे मापदण्ड क्यों ? क्या यह पुरुष वर्चस्व का प्रतीक नहीं ? साम्यवाद किसी भी प्रकार के वर्चस्व को स्वीकार करने के पक्ष में कभी नहीं रहा"।

रुकइया ने उत्तर देने का प्रयास किया – "निश्चित् ही यौन सम्बन्धों को गुह्य विषय माना जाना गलत है किंतु यौन स्वच्छन्दता को स्वीकृति देने से सभ्य स्त्रियों और वैश्याओं में फ़र्क करना मुश्किल हो जायेगा"।

अपराजिता ने कहा – "नहीं, यह फ़र्क फिर भी रहेगा। यौन सम्बन्ध को व्यापार बना देना गलत है। वैश्यायें धन के लिये यौनानन्द को बेचती हैं जबकि यौन स्वच्छन्दता यौनानन्द के सहज आदान-प्रदान की स्वतंत्रता है। तुम स्वयं विचार करो रुकइया ! हम पुनर्जन्म में विश्वास नहीं रखते, खोखले आदर्शों के कारण अपने जीवन को प्रकृतिप्रदत्त सहज जैविक आनन्द से वंचित करने का क्या औचित्य"।

गुह्य विषय पर सार्वजनिक चर्चा को सुनते समय अब्दुल्ला की आँखें भाग्यश्री की देहयष्टि में उलझी रहीं जबकि शिवा के. राजू रुकइया में डूबता चला गया। भाग्यश्री ने अपने मन की शंका प्रकट की – "किन्तु यौनस्वच्छन्दता को समाज में सम्मानित आचरण नहीं माना जाता, समानाधिकार होते हुए भी तिरस्कार की पात्र स्त्री ही होती है"।

अपराजिता ने उग्र होते हुए कहा – "यही तो, यही तो है वह हीन भावना, जो तुम लोगों को खाये जाती है। यौनानन्द पर पुरुषों का ही एकाधिकार क्यों होना चाहिये ? अच्छा ! सच बताना, क्या किसी

आकर्षक और बलिष्ठ युवक को देखकर तुम्हारे मन में कभी उत्तेजना नहीं होती ? क्या तुम्हारा मन नहीं होता... ? और क्या अपनी इच्छा का दमन करना सदा स्त्री का ही धर्म है"?

बहस चल ही रही थी कि तभी वहाँ कन्हैया आ गया। आते ही उसने भाग्यश्री से पूछा – "आज मण्डीहाउस में नसीरुद्दीन शाह का प्ले है, अभी आधे घण्टे बाद, तुम चलोगी" ?

भाग्यश्री तुरंत उठकर खड़ी हो गयी। अब्दुल्ला को अब वहाँ और रुकने का कोई औचित्य न रहा, वह भी चल दिया तो सभा विसर्जित हो गयी।

रात में रुकइया को नींद नहीं आई, उसके कान में अपराजिता के स्वर गूँजते रहे – "... यौन स्वच्छन्दता यौनानन्द के सहज आदान-प्रदान की स्वतंत्रता है... खोखले आदर्शों के कारण अपने जीवन को प्रकृतिप्रदत्त सहज जैविक आनन्द से वंचित करने का क्या औचित्य"?

उधर थिएटर में बैठी भाग्यश्री का मन प्ले से अधिक कन्हैया में लगा रहा और वह अपने सम्मोहक स्वप्नलोक में विचरण करती रही।

दो वर्ष पश्चात्...

साम्यवाद को लेकर अलीओसा के विचार बिल्कुल स्पष्ट थे। आर्थिक असमानता को वह शोषण का परिणाम मानता था और इसीलिए किसी भी तरह किसी की सम्पत्ति को हथिया लेना वह आर्थिक समानता का सहज तरीका मानता था। वह अक्सर तर्क देता – "हम किसी क्रांति की कब तक प्रतीक्षा करेंगे ? जिनके पास उनकी आवश्यकता से अधिक सम्पत्ति है उनकी अतिरिक्त सम्पत्ति पर वंचितों का स्वाभाविक और नैतिक अधिकार है"।

अलीओसा की दृष्टि एक विधवा की धान मिल पर बहुत दिनों से जमी हुई थी। वह किसी भी प्रकार उस मिल को हथियाने की जुगाड़ में लगा रहता। उसकी दृष्टि में साम्यवाद के लिए दीर्घकालीन जनक्रांति में अपनी ज़िन्दग़ी तबाह कर देने की अपेक्षा पूँजीवाद से लड़ने का तात्कालिक और व्यावहारिक समाधान यही था। अंततः वह सफल हुआ। विधवा की धान मिल हथियाने में अलीओसा को सफलता प्राप्त हुई। साम्यवाद ने पूँजीवाद को अपने तरीके से स्वीकार कर लिया।

एक दिन कन्हैया और अब्दुल्ला के बीच "स्वच्छन्द आनन्द का मूल्य" चुकाने को लेकर विवाद हो गया। गर्भवती हो चुकी भाग्यश्री को "यौनानन्द के भौतिक परिणमन" से मुक्ति के लिये पैसे और स्वास्थ्य दोनों को खोना पड़ा। कन्हैया और अब्दुल्ला इसके लिए एक-दूसरे को दोषी मानते थे। इस अंतहीन विवाद से मुक्ति के लिये भाग्यश्री ने कन्हैया के समक्ष विवाह का प्रस्ताव रखा जिस पर अब्दुल्ला ने आपत्ति की। वैश्विक परिवार के सिद्धांत का प्रबल पक्षधर अदुल्ला अब भाग्यश्री पर एकाधिकार मानने लगा था। उधर रुकइया ने भी स्वच्छन्द यौनानन्द के अधिकार को अंततः स्वीकार कर लिया था और अब वह फ़ीमेल सेक्स इरॉज़ल डिस-ऑर्डर्स पर अपराजिता के साथ मिलकर एक पुस्तक लिखने की योजना बना रही थी।

साम्यवादी प्रगतिशीलता भारत में भागी चली जा रही थी। मुस्लिम भाइयों की धार्मिक भावनाओं को आहत होने से बचाने के लिए बंगाल के एक गाँव में हिन्दू भाइयों की पाखण्डपूर्ण दुर्गापूजा

पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था । 'आहत' नामक गेंद कभी भी मुस्लिम भाइयों को सता सकती थी इसलिए उसे उठाकर अक्सर हिन्दू भाइयों की ओर फेक दिया जाता था । उनके आपसी व्यवहारों में संदेहों की उष्णता थी फिर भी अख़बारों में उनके लिये "भाई" सम्बोधन धर्मनिरपेक्षता की गारंटी के लिये आवश्यक माना जाता था । प्रगतिशीलों का यह दृढ़ विश्वास था कि आहत नामक मामूली सी नाज़ुक सी गेंद रूस और ईरान से भारत आकर बस गए विदेशी हिन्दुओं के मस्तिष्क में प्रवेश करके भी कभी उन्हें आहत नहीं कर सकती ।

उधर ब्राह्मणीय मनुवादी फासीवाद से आहत कन्हैया को मार्क्सवादी लेनिनवादी पार्टी से विधायक का टिकट मिल गया और वह अपने एक कांग्रेसी मित्र से चुनाव जीतने के टिप्स सीखने में अधिक रुचि लेने लगा ।

इधर रुकइया को अभी-अभी पता चला कि किसी ने भाग्यश्री की हत्या कर दी है । विश्वविद्यालय कैम्पस में चर्चा है कि ऐसी हत्यायें भगवावादियों के अतिरिक्त और कोई कर ही नहीं सकता ।

हाँ ! अब्दुल्ला आजकल कहीं दिखायी नहीं देता ।

१२.स्वामित्व

राजा जनक के विशिष्ट अतिथि गृह में ठहरे हुए रावण को आज तीसरा दिन था। उसे अपने राज्य की चिंता सता रही थी और जनक थे कि लंकेश को समय नहीं दे पा रहे थे। लंकेश को लगा कि जनक उसकी जानबूझ कर उपेक्षा कर रहे हैं, क्योंकि यह पहली बार नहीं था कि लंकेश को इतनी प्रतीक्षा करनी पड़ी हो, पहले भी कई बार ऐसा हो चुका था। रावण के लिए यह अपमानजनक बात थी किन्तु वह हर बार मन मसोस कर रह जाता था। नियोग के वैकल्पिक उपायों और जेनेटिक इंजीनियरिंग पर वह विगत कई वर्षों से शोध कार्य कर रहा था। अपने प्रोजेक्ट पर चर्चा किए बिना वापस लंका जा भी तो नहीं सकता था। मिथिला राज्य में कई ऐसे ऋषि-महर्षि थे जो जेनेटिक इंजीनियरिंग के क्षेत्र में कार्य कर रहे थे, उनसे मिलना रावण के लिए बहुत आवश्यक था।

अंततः रावण की भेंट राजा जनक से हो ही गयी... और अकेले जनक ने ही नहीं अपितु जेनेटिक इंजीनियरिंग के विशेषज्ञ कई महर्षियों के साथ उन्होंने लंकाधिपति से ससम्मान भेंट की। बड़े ही उत्साह, जिज्ञासा और गरिमामय वातावरण में वैज्ञानिक सम्भाषा प्रारम्भ हुई। एक सप्ताह तक चले उस सेमीनार में चिकित्सा के विभिन्न विषयों एवं विधाओं पर ज्ञान और तकनीक का आदान-प्रदान हुआ। अंतिम दिन राजा जनक ने अपने विशेष शल्यकक्ष में मोतियाबिंद की शल्य चिकित्सा का अतिथि विशेषज्ञों के समक्ष स्वयं डिमॉन्स्ट्रेशन भी किया जिसे देखकर रावण बहुत प्रभावित हुआ।

उस समय नियोग की इन-विवो तकनीक ही सहज और राजा द्वारा अनुशंसित हुआ करती थी। रावण की इन-विट्रो तकनीक सुनकर सभी महर्षि आश्चर्य चकित रह गए। उनमें से कई को तो विश्वास ही नहीं हुआ कि मानव शरीर से बाहर स्पर्म और ओवम का किसी कुम्भ में फ़र्टीलाइजेशन संभव हो सकता है। गहन वैज्ञानिक चर्चा में रावण ने उन्हें संतुष्ट करने का प्रयास किया किन्तु बात स्पर्म डोनेशन पर आकर ठहर गयी। रावण चाहता था कि आर्यावर्त के श्रेष्ठ महर्षि स्वेच्छा से ही इस पुनीत कार्य के लिए अपने स्पर्म का डोनेशन करें किंतु इसके लिए महर्षि तैयार नहीं हो रहे थे। उन्हें भय था कि कहीं रावण जेनेटिकली मोडीफाइड राक्षसों की पूरी सेना ही न तैयार कर दे।

रावण ने अपने शोध कार्य को आगे बढ़ाने के लिए मिथिला के वैज्ञानिक संसाधनों के सहयोग का प्रस्ताव प्रस्तुत किया जिसे जनक ने महर्षियों के दबाव में आकर स्वीकार करने में असमर्थता प्रदर्शित की। रावण ने यह विश्वास दिलाने का पूरा-पूरा प्रयास किया कि वह जेनेटिक इन्जीनियरिंग का लेश भी दुरुपयोग नहीं करेगा... वह केवल मानवहित में ही अपने शोध को आगे बढ़ाना चाहता है। महत्वाकांक्षी रावण की योजना थी कि वह महर्षियों के स्पर्म से विश्व की एक श्रेष्ठतम मानव जाति विकसित करेगा।

महर्षियों के आगे लंकाधिपति की एक न चली। मिथिला से रावण को निराश होना पडा। किन्तु इतने महत्वाकांक्षी प्रोजेक्ट को इतनी सरलता से छोड़ने को वह तैयार न था। उसने मन ही मन एक योजना बनाई और लंका की ओर प्रस्थान किया।

रावण को श्रेष्ठतम मानव जाति विकसित करने के लिए आर्यावर्त के श्रेष्ठतम महर्षियों के स्पर्म चाहिए थे... किसी भी मूल्य पर।

रावण ने अपनी महत्वाकांक्षी योजना के संसाधनों के लिये नए सिरे से विचार किया और बलपूर्वक महर्षियों के स्पर्म प्राप्त किए । तब राजा जनक को भी इस वैज्ञानिक कोलेबोरेशनके लिए लंकाधिपति के आगे झुकना ही पड़ा ।

अंततः रावण का प्रयोग सफल हुआ । विश्व के प्रथम टेस्ट ट्यूब बेबी को लेकर जो व्यक्ति सर्वाधिक उत्साहित था वे थे स्वयं राजा जनक । उन्होंने मन ही मन एक योजना बनानी शुरू कर दी । निर्धारित समय पर इन-विट्रो भ्रूण ने जन्म लिया । विश्व के तत्कालीन महान गायनेकोलोजिस्ट, पीडियाट्रिशियन और जेनेटिक इंजीनियर रावण ने उस नवजात शिशु को लंका ले जाना चाहा पर जनक ने इसकी अनुमति नहीं दी । महर्षियों ने तर्क दिया कि उस नवजात के जैविक माता-पिता मिथिला के हैं अतः केवल अपने तकनीकी योगदान के आधार पर ही रावण का उस नवजात कन्या पर कोई अधिकार नहीं बनता । रावण की अति महत्वाकांक्षी योजना पर पानी फिर गया । उसे भारी मन से दाँत पीसते हुए लंका वापस जाना पडा, उसे लगा कि मिथिला नरेश जनक ने उसके साथ विश्वासघात किया है, उसकी बौद्धिक सम्पदा का बलात अपहरण किया है । विश्व के महान ऑप्थैल्मोलॉजिस्ट जनक के साथ महान गायनेकोलॉजिस्ट रावण की ठन गयी । दो नृप जो कि अपने समय के श्रेष्ठ वैज्ञानिक भी थे जैविक आधार, भावना और तकनीकी के स्वामित्व को लेकर एक दूसरे के शत्रु बन गए ।

मानापमान, लाभालाभ, जय-पराजय, राग-विराग आदि के बन्धनों से मुक्त विदेहराज जनक तो महर्षियों को पहले ही वचन दे चुके थे कि यह टेस्ट ट्यूब बेबी किसी भी कीमत पर रावण को नहीं दी जायेगी ।

राजा जनक ने महर्षियों की आज्ञा से उस टेस्ट ट्यूब बेबी का नाम रखा 'सीता' और बड़े ही स्नेह से उसका पालन पोषण किया । त्रेतायुग की प्रथम टेस्टट्यूब बेबी सीता सम्पूर्ण मिथिला की बेटी बनी ।

बाद में जब सीता का स्वयंवर हुआ तो अपनी वर्षों पूर्व की वैज्ञानिक उपलब्धि को देखने का मोह संवरण नहीं कर सका रावण और अनामंत्रित होते हुए भी मिथिला पहुँच ही गया । सारे अपमान के बाद भी वह अपनी उपलब्धि को पाना ही चाहता था, पर दुर्भाग्य कि रावण को इस बार भी असफलता ही हाथ लगी । एक बार फिर रावण को निराश और अपमानित होकर वापस जाना पडा ।

स्वयंवर में जनक दुलारी सीता ने उत्तरकौशल के राजकुमार राम का वरण किया पर भाग्य ने एक बार फिर करवट ली और राम को सीता के साथ निर्वासित जीवन जीने के लिये रावण के उपनिवेश वाले भाग में दण्डकारण्य जाना पड़ा । जब रावण को अपने दूतों से यह पता चला कि निर्वासित राम उसी के उपनिवेश में अपना समय काट रहे हैं तो एक बार फिर उसने सीता को प्राप्त करने का प्रयास किया । रावण ने इस बार छल का सहारा लिया । उसने अपनी वैज्ञानिक उपलब्धि का अपहरण कर लिया । उसे किसी भी कीमत पर अपनी महत्वाकांक्षी योजना को आगे बढ़ाना ही था । इससे आगे का किस्सा आप सब जानते ही हैं कि ईश्वर को कदाचित उसकी योजना स्वीकार नहीं थी और उसे अपनी महत्वाकांक्षी योजना की विफलता के साथ अपनी मृत्यु को भी स्वीकार करना पड़ा ।

***

१३. शिवभक्त रावण की रस-साधना

पता नहीं बहुमुखी प्रतिभा के धनी रावण के हाथ में कितनी ब्रेन लाइन्स थीं... कम से कम दो तो रही ही होंगी या फिर हो सकता है कि दो से भी अधिक रही हों। किंतु इतना तो तय है कि उसे दशानन की उपाधि यूँ ही नहीं दे दी गई होगी। ज्ञान और कला के समस्त विषयों में उसकी प्रवीणता जहाँ उसे दशानन की अद्‌भुत... अपूर्व उपाधि से विभूषित किए जाने का कारण बनी तो वहीं अपनी प्रतिभा के अन्धप्रयोग और जुनून ने उसे युद्ध में अकाल मृत्यु का श्राप भी दे दिया था।

रावण की शिवभक्ति जगत प्रसिद्ध थी। सच्ची भक्ति उसी में होती है जिसमें हमारा दृढ़विश्वास होता है। रावण को शिव और पार्वती में अगाध श्रद्धा थी। शिव और पार्वती के प्रति श्रद्धा तो राम को भी बहुत थी किंतु उनकी यह श्रद्धा अपने आराध्य के अलौकिक स्वरूप में थी जबकि रावण की श्रद्धा अपने आराध्य के लौकिक स्वरूप में थी। अपने लौकिक स्वरूप में शिव न केवल टॉक्ज़िकोलॉजी अपितु केमिस्ट्री के भी प्रतीक थे। यही कारण है कि गुरुकुल में अन्य 'राजार्हं' विषयों के अध्ययन के साथ-साथ चिकित्साशास्त्र के अध्ययन में, और उसमें भी जेनेटिक्स, फ़ॉर्मेको-जेनेटिक्स और फ़ॉर्मेको-डायनामिक्स में रावण की विशेष रुचि थी। यह जनश्रुति थी कि लंकेश ने शिव के वीर्य और पार्वती के रज को बड़ी कठिन साधना से सिद्ध कर लिया है। यह साधना रस-साधना की प्रारम्भिक किंतु सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिद्धि मानी जाती है। उस समय के बड़े-बड़े रसशास्त्रज्ञ भी शिववीर्य के तेज के आगे अपनी पराजय स्वीकार कर चुके थे।

त्रेतायुग में प्रचलित वैज्ञानिक शब्दावली आज रूढ़ हो चुकी है इसलिए उसे लेकर कलियुग में अर्थ का अनर्थ होने की पूरी-पूरी सम्भावना है अतः उस युग की तकनीकी शब्दावली से परिचित होना आवश्यक है। उस काल में शब्द की प्रायः लक्षणा शक्ति के प्रयोग एवं मानवीयकरण के साथ काव्यात्मक शैली में गूढ़ से गूढ़ विषयों को सूत्र रूप में कहने की पद्धति प्रचलित थी। तत्कालीन वैज्ञानिक टर्मिनोलॉजी के अनुसार तब मर्करी को शिव का वीर्य कहा जाता था और गन्धक को पार्वती का रज।

पारद के चंचल स्वभाव और तेज से उस समय के सभी फ़ॉर्मेकोलॉजिस्ट परिचित थे। पारद से स्वर्ण और जीवन रक्षक औषधियाँ बनाने के लिए सभी तत्कालीन वैज्ञानिक दिन-रात एक किए दे रहे थे। स्वर्ण तो रावण भी नहीं बना सका किंतु पारद सिद्धि से उसे जो 'रस' प्राप्त हुआ उसने लंका के लिये द्वीप-द्वीपांतरों से फ़ॉरेन करेंसी के रूप में स्वर्ण की बरसात कर दी थी। रावण द्वारा प्राप्त 'रस' के विज्ञान को ही बाद में "रस कल्पना" या "रसशास्त्र" के नाम से जगत में प्रसिद्धि प्राप्त हुई।

उत्कृष्ट वनौषधियों की उपलब्धता के कारण आर्यावर्त के दक्षिण भाग में स्थित अपने कुछ उपनिवेशों में रावण ने अपनी प्रसिद्ध रसशालायें स्थापित कर रखी थीं। अनवरत साधना के पश्चात पारद के चांचल्य पर रावण को अंततः विजय प्राप्त हुयी थी। रावण ने अपने प्रयोगों के अध्ययन से पाया कि वनौषधियों के स्वरस से शोधित पारद में एक निश्चित मात्रा में गन्धक मिला कर मर्दन करते रहने से पारद का बन्धन सम्भव है। जिस प्रकार वीर्य में रहने वाले शुक्राणु की चंचलता डिम्ब से संयोग होते ही समाप्त हो जाती है उसी तरह पारद की चंचलता गन्धक के संयोग से समाप्त हो जाती है। तुल्य गुणधर्मी होने के कारण गन्धक को पार्वती के रज की संज्ञा इसीलिये प्राप्त हुई... अन्यथा आराध्य शिव और पार्वती तो

निर्गुण, निराकार, अनादि और अनंत हैं। वहाँ इहलोक के अर्थ वाले कहाँ वीर्य और कहाँ रज ? किंतु प्राच्य भारतीय वैज्ञानिक शब्दावली तो आध्यात्मिकता से प्रभावित थी... ऐसा नामकरण तो होना ही था।

पारद और गन्धक के रासायनिक संयोग से प्राप्त केमिकल कम्पाउण्ड को 'रस' की संज्ञा दी गई। इस 'रस' और वनस्पतियों के संयोग से निर्मित आयुर्वेदिक औषधियों को इस कलियुग में भी रस ही कहा जाता है। रावण का ऐसा विश्वास था कि इस 'रस' से निर्मित औषधियों के युक्तियुक्त प्रयोग से मनुष्य के "बीजभाग अवयव", जिसे कलियुग की भाषा में "जींस" की संज्ञा दी गई है, की प्रकृति में परिवर्तन सम्भव है। जींस की प्रकृति में इच्छानुरूप परिवर्तन जेनेटिक इंजीनियरिंग का मूल उद्देश्य है। कलियुग के वैज्ञानिकों की तरह ही रावण भी प्रकृति से छेड़छाड़ का प्रेमी था। प्रकृति की शक्तियों पर विजय प्राप्त करना रावण की सबसे बड़ी महत्वाकांक्षा थी। वह अपनी इच्छा और आवश्यकता के अनुरूप मनुष्य संतति में विशेष गुणाधान कर मनुष्य की विशेष प्रजाति उत्पन्न करना चाहता था जिसमें बलिष्ठता, निरोगता, चिरयौवन, इच्छानुरूप आधानित गुण सम्पन्नता अर्थात जेनेटिकली मोडीफ़ाइड ट्रेट्स और इच्छामृत्यु के गुण नियोजित किए जाने थे।

रावण का अपने भौतिक प्रयोगों की एकांगी सोच के कारण आर्यावर्त के ऋषियों की अध्यात्म साधना से गम्भीर विरोध था। उसके अनुसार आध्यात्मिक साधना व्यष्टिगत लाभ के लिए तो ठीक है किंतु बहुसंख्य आमजनता के लिए उसकी कोई समष्टिगत उपादेयता नहीं है। वह व्यक्तिगत प्रतिभाओं की सार्वजनिक उपादेयता का प्रबल पक्षधर था और वैज्ञानिक उपलब्धियों एवं प्रकृति में उपलब्ध भौतिक संसाधनों के उपयोग से अपने राज्य की उन्नति के साथ-साथ प्राकृतिक या कृत्रिम आपदाओं से जनता की रक्षा करने के लिये कटिबद्ध था। अपने वैज्ञानिक व्यवहारवाद को रावण ने "रक्ष" संस्कृति का नाम दिया जिसके कारण वह राक्षस कहलाया।

लंकाधिपति रावण प्रकृति की शक्तियों को जीतने के लिये आजीवन संघर्ष करता रहा किंतु वह लंका के उष्ण और ह्यूमिड वातावरण को जीत न सका। उसके सारे उपाय निष्फल होते जा रहे थे। उसे जेनेटिक़ इंजीनियरिंग और फ़ॉर्मेको-जेनेटिक्स के अनुसन्धान के लिये आर्यावर्त के अपेक्षाकृत शीतल वातावरण में अपनी प्रयोगशालायें स्थापित करने की महती आवश्यकता थी। अपने उत्कृष्ट प्राकृतिक संसाधनों की सर्व सुलभता के कारण आर्यावर्त वैज्ञानिक प्रयोगों के लिए एक आदर्श स्थान के रूप में मान्य था।

उधर हिमालय की ओर, आर्यावर्त के उत्तरी भाग के ऋषियों ने स्वस्थ्य रहने के लिये आत्मसंयम, प्रकृति अनुकूल जीवनवृत्ति, आचरण की शुद्धता आदि स्वस्थ्यवृत्त के नियमों पर अधिक बल दिया। तथापि, वहाँ रुग्ण होने पर वानस्पतिक औषधियों के प्रयोग का प्रचलन भी वर्ज्य नहीं था।

त्रेता युग में बौद्धिक सम्पदा के पेटेंट का विचार तक किसी के मन में नहीं था। आर्यावर्त के उत्तरी भाग में रावण ने न केवल "रस" निर्मित रसौषधियों का प्रचार किया अपितु मुक्त हृदय से अपनी वैज्ञानिक तकनीकों एवं उपलब्धियों को भी सर्वसुलभ करवाया। अपने इस योगदान के प्रतिफल में वह आर्यावर्त के

शीतल भागों में अपनी इनविवो फ़र्टीलाइजेशन और जेनेटिक इंजीनियरिंग की प्रयोगशालायें स्थापित करना चाहता था जहाँ वह अपने सर्वाधिक महत्वाकांक्षी प्रोजेक्ट पर कार्य कर पाता।

यद्यपि मिथिलाधिपति विदेहराज जनक ने उसे अपने राज्य में उपलब्ध संसाधनों के प्रयोग की अनुमति प्रदान कर दी किंतु प्रकृति की व्यवस्था कुछ ऐसी है कि जब उसके रहस्यों की गोपनीयता एक सीमा से अधिक भंग होने लगती है और उसके नियंत्रण को अन्य शक्तियाँ अपने हाथ में लेने का प्रयास करने लगती हैं तो अन्य शक्तियों का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है और प्रकृति के अति गोपन रहस्य सुरक्षित बने रहते हैं।

रावण के साथ भी ऐसा ही हुआ। मन्दोदरी के लाख अनुनय विनय करने पर भी वह जेनेटिकली मोडीफ़ाय़ड मनुष्य उत्पन्न करने के प्रोजेक्ट की पूर्ति के लिये दशरथ की कुलवधू, अपनी प्रथम टेस्ट ट्यूब बेबी सीता का छलपूर्वक अपहरण कर लाया और उसके लिए युद्ध तक के लिए तैयार हो गया।

मनुष्य समाज में पत्नी का अपहरण अत्यंत दुःख और लज्जा का विषय माना जाता है। राम के लिए तो यह और भी दुःखदायी था क्योंकि जो सीता राम की दृष्टि में एक सर्वगुण सम्पन्न अर्धांगिनी थी वही सीता रावण की दृष्टि में थी मात्र एक गिनी पिग।

राम ने अपने परम भक्त हनुमान को सीता का पता लगाने के लिये लंका भेजने का निश्चय किया। राम को यद्यपि यह तो पता चल गया था कि रावण ने सीता को लंका में ही कहीं बन्दिनी बना कर रखा है किसी अन्य द्वीप में नहीं पर वे स्थान और स्थिति सुनिश्चित कर लेना चाहते थे। हनुमान ने अशोक वाटिका स्थित राजकीय अतिथि गृह में नज़रबन्द रखी गई सीता से चर्चा की। सीता जी ने हनुमान जी को वक्तव्य दिया कि वे रावण के प्रोजेक्ट में प्रयोग की वस्तु बनने की अपेक्षा सुसाइड कर लेना पसन्द करेंगी। सीता जी के वक्तव्य से हनुमान दुःखी हो गए किंतु उन्हें विश्वास हो गया कि सीता ने अभी तक रावण को अपनी कंसेंट नहीं दी है। उन्होंने सीता को सहानुभूतिपूर्वक विश्वास दिलाया कि महाबली बालि पर विजय प्राप्त कर चुके राम के लिये रावण की क्या बिसात ! महाकूटनीतिज्ञ राम ऐनकेन प्रकारेण सीता को मुक्त करा ही लेंगे अतः उन्हें सुसाइड के बारे में तो सोचना भी नहीं चाहिए।

एक जासूस के रूप में हनुमान बहुत अच्छे प्रमाणित हुए। उन्होंने सीता का पता तो लगाया ही, जानबूझ कर कुछ गड़बड़ियाँ भी कर दीं जिसके कारण वे रावण के सैनिकों द्वारा न केवल पकड़े गए अपितु अपने अपराध के लिये दण्डित भी किए गए। दण्ड पाने के बाद अपनी पूर्व नियोजित योजना के अनुसार चतुर हनुमान ने पूरी लंका में घूम-घूम कर अंतर्राष्ट्रीय नियमों की दुहाई देते हुए स्वयं को दण्डित किये जाने का प्रचार किया और राम के प्रति लंकावासियों की सहानुभूति पाने की रणनीतिक सफलता अर्जित कर ली।

शीघ्र ही पूरी लंका में यह सूचना आग की तरह फैल गयी कि रावण ने अंतर्राष्ट्रीय नियमों का उल्लंघन करते हुये आर्यावर्त के जासूस को दण्डित किया है। पूरी लंका में रावणराज के विरुद्ध आग फैल गई। अब सोने की लंका को राख होने से कोई नहीं बचा सकता था। उसके संपूर्ण भौतिक संसाधन और धनसम्पदा युद्ध की भेंट चढ़ने की पृष्ठभूमि तैयार हो चुकी थी।

सीता के बारे में सुनिश्चित हो जाने और राष्ट्रीय सुरक्षा आयोग की अनुशंसा मिल जाने पर राम ने अंगद को रावण के पास सीता को वापस करने का सन्देश भेजा। अंगद ने रावण के दरबार में जाकर तर्क

दिया कि सीता को मानवीय आधार पर निःशर्त मुक्त कर दिया जाना चाहिए, सीता को गिनी पिग की तरह जेनेटिक प्रयोगों के लिये प्रयुक्त करना मानवीय संवेदनाओं की हत्या करना है।

रावण के सिर पर तो जेनेटिक्स का भूत सवार था, उसने तर्क दिया कि मानवीय संवेदनाओं की दुहाई के आधार पर तो वह कभी भी इस प्रयोग को कर ही नहीं पाएगा।

अंगद ने प्रतिवाद किया था कि आवश्यकता ही क्या है? ऐसे ऊटपटाँग प्रयोगों से वह किसका भला करना चाहता है?

रावण की निष्ठा मानवीय संवेदनाओं से अधिक अपने ड्रीम प्रोज़ेक्ट के प्रति थी। उसने कहा कि वह मानवीय संवेदनाओं का सम्मान करता है और सीता के साथ बिना उनकी लिखित कंसेंट के कोई प्रयोग नहीं करेगा।

रावण के लिए उसका वैज्ञानिक प्रोजेक्ट मूल्यवान था जब कि अंगद के लिये मूल्यवान था राम के साथ किया गया अपना राजनीतिक अनुबन्ध। कोई भी अपने मूल्यों को त्यागने के लिए तैयार न था। क्रोधित अंगद ने शक्ति परीक्षण हेतु रावण को वहीं उसके दरबार में चुनौती दे दी।

रावण अपने वैज्ञानिक प्रयोगों की व्यस्तता के कारण अपनी जनता से दूर होता चला गया था। अंगद ने उत्तर कोशल की लोकलुभावन लोकतांत्रिक व्यवस्था के स्वप्न दिखाकर रावण के कठोर अनुशासन से त्रस्त लंकावासियों को युद्ध के समय राम का साथ देने के लिए तैयार कर लिया। अंगद की सबसे बड़ी सफलता थी रावण के भाई विभीषण को राम के पक्ष में कर लेना।

अंगद वापस राम के बेस कैम्प में पहुँचे और अपनी कूटनीतिक सफलता का समाचार दिया। पूरी सेना हर्षोल्लास से जय-जयकार करने लगी।

देखते ही देखते युद्ध की तैयारियाँ प्रारम्भ हो गईं। हृदय की कोमल संवेदनाओं और मस्तिष्क की निष्ठुर प्रखरता के बीच का वैचारिक युद्ध रक्त युद्ध में बदलने जा रहा था।

राम नें लंका पर चढ़ाई कर दी। रावण को पराजित कर पाना आसान नहीं था किंतु शीघ्र ही राम की कूटनीतिक तैयारियों के परिणाम सामने आने प्रारम्भ हो गए। रावण की रणनीति के सारे भेद राम को पहले ही ज्ञात हो जाते थे। रावण की यह सबसे बड़ी रणनीतिक दुर्बलता थी जिसका लाभ राम को मिला।

महाबली, महापराक्रमी, अद्भुत प्रतिभाओं का धनी रावण अपनी अतृप्त ऐषणाओं के साथ ही राम के साथ युद्ध करते हुए पंचत्व में लीन हुआ और इसके साथ ही त्रेतायुग के एक तमोमय वैज्ञानिक अध्याय का भी अंत हो गया।

मरते समय रावण ने राम को श्राप देते हुए कहा कि "हे राम! तुमने मेरे वैज्ञानिक प्रयोगों में बाधा पहुँचायी और छलपूर्वक मेरी हत्या की है इसलिये मैं तुम्हें श्राप देता हूँ कि कलियुग में तुम्हारे वंशजों को सामूहिक रूप से मल्टीनेशनल कम्पनीज के प्रयोगों के लिये गिनी पिग बनना पड़ेगा"।

आज म्लेच्छ देशों के लिये भारत एक जीवित प्रयोगशाला है जिसमें जीवित मनुष्यों पर विभिन्न औषधियों के प्रयोग किए जाते हैं। तब त्रेता में केवल एक सीता को गिनी पिग बनाये जाने के कारण भयानक युद्ध हुआ था किंतु कलियुग में रावण के श्राप के कारण पूरे भारत की कोटि-कोटि निरीह जनता गिनी पिग बनने को विवश हो गई।

प्रकृति का अनावरण एक सीमा तक तो क्षम्य है किंतु उसके बाद कदापि नहीं । राम वैज्ञानिक प्रयोगों के कट्टर विरोधी नहीं थे किंतु जिस तरह रावण अपने जेनेटिक प्रयोगों द्वारा प्रकृति की क्रियेटिव शक्ति को अपने नियंत्रण में लेना चाह रहा था वह भविष्य के लिये अशुभ था । ऐसी उपलब्धियों से उनके सदुपयोग के स्थान पर दुरुपयोग की सम्भावनाएं ही अधिक प्रबल हुआ करती हैं । राम अपनी इसी दूरदर्शिता के कारण आर्यावर्त में एक लम्बे समय तक आध्यात्मिक वातावरण बनाए रख सकने में सफल रहे थे ।

अब पुनः, कलियुग के इस काल खण्ड में वैज्ञानिकों की अभिरुचि जेनेटिक इंजीनियरिंग की ओर बढ़ती जा रही है । भिण्डी, टमाटर, बैंगन आदि वनस्पतियों में मेढक, छिपकली आदि प्राणियों के बीजभाग अवयव के प्रत्यारोपण द्वारा वनस्पति और प्राणियों के बीच की प्राकृतिक सीमा रेखा का उल्लंघन कर चुके कलियुगी वैज्ञानिक रावण की महत्वाकांक्षी योजना को पुनर्जीवित करने में लगे हुए हैं । रावण की आत्मा इतने युगों बाद पुनः अपने अस्तित्व में आ रही है ।

***

१४. मूर्ति मर सकती है

वे संग की तराशी हुयी पाँच ख़ूबसूरत मूर्तियाँ थीं, छूने में मक्खन की तरह। शुरू-शुरू में उँगली से तनिक छूने भर से पिघल उठती थीं किंतु अब कोई भी ग़र्मी उन्हें पिघला नहीं पाती... भले ही उन्हें धधकती हुयी आग में ही क्यों न झोंक दिया जाय। सभी मूर्तियों को अलेप्पो में एक मकान की दूसरी मंज़िल पर एक छोटे से कमरे में रखा गया था। वे मूर्तियाँ थी किंतु उन्हें शारीरिक यंत्रणा की हार्डनिंग के बाद सेक्सुअल टेम्परिंग के दौर से भी रोज गुज़रना होता था गोया ज़र्राही के लिए कोई औज़ार तैयार किया जा रहा हो।

यह ईसवी सन् २०१५ की दर्द से भरी एक सुबह थी। पत्थर हो चुके इंसान कहर ढाते जा रहे थे तो कुछ लोग इस कहर की चोट सह-सह कर पत्थर हुए जा रहे थे। बारूद की गन्ध सीरिया की हवा में रोज की तरह घुली हुई थी और ख़ुद को औरतों का मालिक समझने वाले मर्द उन्हें तरबूज की तरह बेच रहे थे।

जिस दिन उन्हें रक्का के बाज़ार में नीलामी के लिए ले जाया जाना था उस दिन भी उन सभी मूर्तियों की टेम्परिंग की गई थी। दाढ़ी वाले तेरह लोग कमरे में आए थे, सभी ने मिलकर एक साथ मूर्तियों की टेम्परिंग की। वे जैसे ही कमरे में घुसे, सभी मूर्तियाँ वहीं ज़मीन पर बिछे गद्दों पर ख़ुद-ब-ख़ुद बिछ गईं थीं, वे इतनी कमज़ोर हो चुकीं थीं कि अब और हार्डनिंग के लायक नहीं रहीं थीं। एक सबसे छोटी मूर्ति जिसकी उम्र महज़ नौ साल थी, टेम्परिंग के बीच-बीच में कराह उठती थी। बाज़ार ले जाने से पहले उन्हें पानी से धोया गया था और फिर एक लम्बे कपड़े से सिर से पाँव तक ढक दिया गया था। यह हिज़री सन् चौदह सौ गुज़रने के बाद सैंतीसवें साल की बात है। दुनिया अभी तक ख़त्म नहीं हुई थी, शायद दुनिया को एक बार फिर ओट्टोमन साम्राज्य के बेहद घिनौने दर्द से होकर गुज़रना था।

संगमरमर की तीन मूर्तियों की उम्र चौदह से उन्नीस के बीच थी जबकि चौथी मूर्ति की उम्र सत्ताइस साल थी। दाढ़ी वाले लोगों ने पाँचों मूर्तियों के हाथों में लोहे की हथकड़ियाँ पहना दी थीं और वे सब एक ही जंजीर से बाँध दी गईं थीं। वे लोग जब रक्का पहुँचे तो दोपहर ढलने लगी थी। वे सब सीधे बाज़ार पहुँचे, वहाँ कुछ लोगों से बातें कीं और कपड़े से ढकी मूर्तियों को एक जगह खड़ा कर दिया। वहाँ कुछ और भी व्यापारी थे जो नीलामी के लिए अपने-अपने इलाक़ों से नायाब मूर्तियाँ ले कर आए थे।

नीलामी शुरू हो चुकी थी। व्यापारी लोग चीख-चीख कर ग्राहकों को आकर्षित कर रहे थे। वे हर ग्राहक से एक ही वादा करते थे कि वे उन मूर्तियों का कभी भी, कहीं भी और कैसा भी स्तेमाल कर सकते हैं। उनकी री-सेल वैल्यू भी बताई जा रही थी।

बोलियाँ लगने लगीं, ग्राहकों को मूर्तियों के ऊपर पड़े कपड़े को हटाकर दिखाया जाता, ग्राहक उन्हें छू-छूकर देखते और...।

अलेप्पो से आयी पाँच मूर्तियों में से दो बहुत अच्छे दामों में बिक गईं। व्यापारी बहुत उत्साहित था कि तभी एक ग्राहक ने आकर नौ साल की मूर्ति के ऊपर ढके कपड़े को हटाया, एक हाथ से उसके बाल पकड़कर चेहरा ऊपर किया और फिर मुस्कराकर व्यापारी की ओर देखा। छोटी मूर्ति अपनी सत्ताइस साल की माँ से एकदम सटकर खड़ी थी। जब ग्राहक ने उसे कमर से पकड़कर उठाना चाहा तो वह अपनी माँ की टाँगों से चिपट गई किंतु व्यापारी ने आगे बढ़कर ग्राहक की मदद की। छोटी मूर्ति की हथकड़ी खोल दी गई, उसे जंजीर से मुक्त कर दिया गया और अपनी माँ से चिपटी मूर्ति को को ज़बरन खींच लिया गया। सत्ताइस साल की बड़ी मूर्ति के ज़िस्म में एक ज़ुम्बिश सी हुई, मुँह से भरपूर चीख निकली और फिर वह वहीं ढह कर बेहोश हो गई।

मूर्ति के साथ वाली मूर्ति को निर्विकार रहने का हुक़्म था, वह पूर्ववत ही खड़ी रही। व्यापारी ने बेहोश होकर गिर पड़ी मूर्ति पर कहीं से पानी लाकर डाला। संग की मूर्ति तनिक होश में आयी उसके हलक़ से एक शब्द निकला "आयशा" और इसके बाद उसका ज़िस्म हमेशा के लिए ख़ामोश हो गया।

***

१५. भोर का अँधेरा

एक्कीसवीं शताब्दी के सत्रहवें साल श्रीनगर में संसदीय उपचुनाव के दौरान हुई पत्थरबाजी, आगजनी और मात्र सात आशारिया चौदह फ़ीसदी मतदान के कारण चुनाव आयोग द्वारा अनंतनाग के उपचुनाव की तारीख़ बढ़ा दी गई जिसका विरोध करते हुए नेशनल कॉफ्रेंस और कांग्रेस के नेताओं (जी.एस.मीर) ने "इण्डियन डेमोक्रेसी मुर्दाबाद" और "मोदी डेमोक्रेसी मुर्दाबाद" के नारे लगाए। वास्तव में भारतीय लोकतंत्र दुनिया का सबसे अद्‌भुत् लोकतंत्र है जहाँ अराजकता, स्वेच्छाचारिता और निरंकुशता कितनी भी कुलाँचे भरती रहे पर यहाँ की हवायें निर्गुन ही गाती रहती हैं। भीरु हो चुकी ऐसी आध्यात्मिक निर्लिप्तता अन्यत्र दुर्लभ है।

भारतीय उपमहाद्वीप में द्विराष्ट्र सिद्धांत के समर्थकों की दृष्टि सदा से ही अपने आसपास के राष्ट्रों को हड़पने की ओर लगी रही। उनके लड़ाकों ने पौ फटने से पहले सेना के कैम्प में घुस कर हमला करने में दक्षता हासिल कर ली है। भारतीय सैनिकों की भोर को अंधेरों से भर देने वाले ज़िहादियों को संरक्षण देने वाले अलगाववादियों के प्रति भारत सरकार का विनम्र मेजबानी भाव भी अद्‌भुत् और रहस्यमय है।

इधर तेरह सितम्बर को रात दस बजे जबकि अबूझमाड़ के कोहकामेटा गाँव में लोग सोने की तैयारी में थे, माओ दादा की सेना के लगभग सौ साम्यवादियों ने गाँव पर आक्रमण कर दिया और निर्माणाधीन विद्यालय, ब्लॉक लर्निंग सेंटर, ट्रांजिट हॉस्टल, अस्पताल, पंचायत भवन आदि लगभग ढाई करोड़ की सम्पत्ति को गेंती और सब्बल से पूरी तरह क्षतिग्रस्त कर दिया। माओवादी गुरिल्ला रात भर गेंती और फावड़े चलाते रहे जिससे छाई दहशत ने गाँव के लोगों की आँखों से नींद को दूर-दूर तक खदेड़ दिया। साम्यवादी नींद के लिए ग्रामीणों की आँखों से परम्परावादी नींद को भगाना आवश्यक था।

जब भोर हुई और सूरज झाँकने की तैयारी कर रहा था ठीक उसी समय गुरिल्ला गाँव छोड़ कर चलते बने। सुबह सूरज की रोशनी में ग्रामीणों ने ढहाई गई इमारतों को देखा, अब उनकी ज़िन्दगी के अगले कई साल अँधेरों से भरे रहने वाले थे।

सूरज तो प्रकाश फैलाने के लिए तैयार होकर आया था किंतु आते ही उसने भी देखा कि पूरे गाँव में अंधकार ही अंधकार फैल चुका था।

इन गुरिल्लाओं को बौद्धिक संरक्षण प्रदान करने वाले बुद्धिजीवियों का एक बहुत बड़ा वर्ग भारत के महानगरों के कई विश्वविद्यालयों को अपना केन्द्र बना चुका है। भारत के बहुत बड़े-बड़े हिन्दी-अंग्रेजी साहित्यकारों, मानवाधिकारभोगियों, प्रोफ़ेसर्स, फ़िल्मकारों, कलाकारों और सामाजिक कार्यकर्ताओं की एक विराट निरंकुश सेना इन साम्यवादियों के संरक्षण के लिए अहर्निश कटिबद्ध रहने लगी है।

जब अधिकारों के अहं में डूबे लोग सीमाओं का अतिक्रमण करते हैं तो आम लोगों को अंधकार में डुब्ब-डुब्ब डुबोने की घटनायें निर्भीकता से घटने लगती हैं।

दो अप्रैल को रविवार के दिन ब्राह्ममुहूर्त में जबकि सूर्यदेव प्रकाश ले कर आने की तैयारी में थे ठीक उसी समय चौदह वर्षीया एक किशोरी के जीवन को कुछ अधिकार सम्पन्न लोगों ने अंधकार से भर दिया।

सुकमा के चिंतागुफा गाँव के पटेलपारा में सुरक्षाबलों ने सुबह चार बजे एक घर में घुस कर, सो रहे परिवार के साथ मारपीट की और फिर राइफल की नोक पर घर की किशोरी के साथ यौनदुष्कर्म किया। पिछले वर्ष बीजापुर के पेद्दागेलूर में भी बारह महिलाओं के साथ यौनदुष्कर्म की घटना के समाचारों ने बस्तर के वनवासी समुदाय को गहन पीड़ा और आक्रोश से भर दिया था। इससे भी बहुत पहले ब्रिटिश शासन काल में जबकि बस्तर एक स्वतंत्र राज्य था और अंग्रेज़ उसे जीतने के लिए सारे प्रयास करके हार चुके थे तब अंग्रेज़ों, अरबों और मराठों ने एक साथ मिलकर बस्तर पर आक्रमण किया और तीनों ने बस्तर की जनजातीय आधी दुनिया को अपनी यौनपाशविकता का शिकार बनाया था।

दुनिया भर में सैनिकों और सुरक्षा बलों द्वारा यौनहिंसा की घटनाओं से विश्व का इतिहास कलंकित होता रहा है। पिछले पाँच वर्षों में सीरिया और ईराक में तो आइसिस के तथाकथित ज़िहादियों ने क्रूर यौनहिंसा की सारी हदें ही तोड़ डालीं।

क्या बन्दूकधारी आदमी बलात्कार करने के लिए और स्त्रियाँ उनके क्रूर उपभोग की सामग्री बनने के लिए ही पैदा हुयी हैं ? यह प्रश्न बस्तर से ही नहीं पूरी दुनिया से समय-समय पर उठते रहे हैं। अधिकार और विजय के उन्माद में सैनिकों द्वारा स्त्रियों से बलात्कार करने और उन्हें लूटने का इतिहास पिछली कई शताब्दियों से दोहराया जाता रहा है।

स्त्रियों के मामले में साम्यवादियों से लेकर असाम्यवादियों तक की कामुक दृष्टि में अद्भुत् साम्यता पर आज तक किसी शोधकर्त्ता ने किसी शोध की आवश्यकता नहीं समझी।

ब्राह्ममुहूर्त में घटी उस घटना के बाद से चिंतागुफा गाँव की चौदह वर्षीया किशोरी मर्दों को देखते ही चीखने लगती थी। गाँव के गायता ने देखा तो बताया कि लड़की को चीखने के दौरे आने लगे हैं, ग्रामदेवता की पूजा करनी होगी। राजनीतिक दलों को एक अच्छा अवसर मिल गया उन्होंने शहर की औरतों को गाँव भेजा। उन्होंने नारे लगाये और किशोरी को न्याय दिलाने की सरकार से माँग की।

एक दिन अचानक वह लड़की अपने माता-पिता के साथ कहीं ग़ायब हो गई। झोपड़ीनुमा उस घर के दरवाज़े पर लटकते ताले में लोकतंत्र के कई रहस्य आज भी बन्द हैं।

***

१६. समाधान

कामदेव के प्रासाद में उनके भक्तों की भीड़ लगी रहती। लोग अपनी कामसमस्याओं के साथ आते और संतुष्ट होकर जाते। कोई कामकला के ज्ञान की पिपासा लिये आता तो कोई कामवर्धक औषधि के लिए। कामदेव की व्यस्तता का कोई अंत नहीं था।

लोगों की भीड़ तो रति के चारों ओर भी लगी रहती तथापि आराधकों को लेकर उनके मन में सदा एक परिवाद बना ही रहता। रति के पास स्त्री आराधकों का अभाव था। वे सोचतीं – क्या पुरुषों की तरह स्त्रियों की कामविषयक कोई समस्यायें नहीं होतीं ?

कामदेव अपने आराधकों की समस्याओं का समाधान करते तो रति को उनके सहयोग के लिये उपस्थित रहना होता। रति को सन्देह होता कि इस समस्त अनुष्ठान में उनकी भूमिका क्या मात्र एक उपकरण भर की ही है ? अर्धनारीश्वर के अस्तित्व में स्त्री भी उतनी ही महत्वपूर्ण क्यों नहीं है जितना कि कोई पुरुष ?

एक दिन रति से नहीं गया तो उन्होंने एक स्त्री से पूछ ही दिया – "क्या आप अपने पति की कामक्रीड़ा से संतुष्ट हैं"?

वह एक ग्रामीण स्त्री थी, उसने घबरा कर अपना घूँघट और लम्बा किया और लगभग दौड़ती हुयी सी घर के भीतर चली गई।

रति को आश्चर्य हुआ, उन्होंने सोचा - प्रश्न से इतनी घबरा क्यों गई स्त्री ?

वे दूसरी स्त्री के पास गईं, रति के प्रश्न से दूसरी स्त्री भी बिना कोई उत्तर दिए वहाँ से चली गई।

रति तीसरी, चौथी, पाँचवी... कई स्त्रियों के पास गईं। किसी भी स्त्री ने उनके प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। कोई प्रश्न सुनकर घबरा जाती, कोई मुस्कराकर चलती बनती, कोई भृकुटि टेढ़ी कर कहती – निर्लज्ज कहीं की ! तो कोई प्रतिप्रश्न करती – यह भी भला कोई कहने-पूछने का विषय है ?

रति की समस्या और भी बढ़ गई। उन्होंने सोचा – क्या सचमुच ही स्त्रियों की कोई कामसमस्या नहीं होती।

रति निराश हो उठी थीं कि तभी एक वृद्धा स्त्री ने मुस्कराते हुये उनसे कहा – "आप किसी नगरवधू से क्यों नहीं पूछ लेतीं"!

रति को आशा की एक किरण दिखायी दी, वे नगरवधुओं के टोले में जा पहुँचीं। उन्होंने पूछा- "काम व्यापार में पुरुष की कामाग्नि शांत करते हुए आपकी अपनी काम स्थिति कैसी होती है ? क्या देह क्रय करने वाले कामीपुरुष आपकी भी कामाग्नि शांत कर पाते हैं"?

चतुरा नगरवधू ने उत्तर दिया – "देवी ! इस व्यापार में दोनों ही पक्ष निष्ठापूर्वक अपनी-अपनी भूमिका निभाते हैं"।

रति ने उत्साहपूर्वक पूछा – "... अर्थात् पुरुष आपकी काम आवश्यकता पूरी कर पाते हैं, यही न"!

नगरवधू बोली – "मैंने ऐसा तो नहीं कहा देवी ! हम पुरुष की वाँछना पूर्ण करती हैं जिसका वे हमें निर्धारित मूल्य देते हैं। हमारे व्यापार की सीमायें ग्राहक की संतुष्टि के साथ ही समाप्त हो जाती हैं। रही बात हमारी कामेच्छा पूर्ति की, तो उसके लिए..."

नगरवधू ने वाक्य पूरा नहीं किया तो रति को पूछना पड़ा – "बताइये न ! ...उसके लिए..."?

नगरवधू ने एक गहरा निःश्वास छोड़ते हुए अधूरा वाक्य पूरा किया – "... उसके लिए तो हमें भी पुरुष की कृपा पर निर्भर रहना पड़ता है"।

नगरवधू के उत्तर से निराश अनमनी रति समुद्र के किनारे विचरण कर रहीं थीं कि तभी उन्हें कुछ कोलाहल सा सुनायी दिया। कहीं दूर किसी स्त्री-पुरुष के आपसी वाक्युद्ध का सा आभास होते ही स्त्री सुलभ उत्सुकता में रति कोलाहल की दिशा में चल पड़ीं।

समुद्र के किनारे बनी, उच्चमूल्य पर उपलब्ध एक आधुनिक हट में एक स्त्री चीख रही थी, उसका क्लांत सा प्रतीत होने वाला पति एक कोने में रखे आसन पर बैठा बीच-बीच में कुछ प्रतिवाद करता तो स्त्री की चीख और भी बढ़ जाती। शीघ्र ही रति को समझ में आ गया कि विवाद का कारण स्त्री की यौन असंतुष्टि है।

वे एक सम्पन्न दम्पति थे और अपने नगर से दूर समुद्रतट पर विचरण हेतु आए हुए थे। पुरुष स्त्री की कामेच्छा पूरी कर सकने में असमर्थ था जिसके समाधानस्वरूप स्त्री ने जिगोलो की सेवायें लेनी प्रारम्भ कर दी थीं। पति नहीं चाहता था कि उसकी पत्नी किसी जिगोलो की सेवायें प्राप्त करे।

निढाल से हुये पुरुष ने कहा – "यह अनैतिक है और समाज इसकी स्वीकृति नहीं देता। तुम्हें समझना होगा, यह भारत है और यहाँ का समाज स्त्री को यह सब करने की स्वतंत्रता नहीं देता"।

स्त्री चीखी – "हाँ..हाँ, स्वीकृति-अस्वीकृति के सारे अधिकार पुरुष ने हथिया जो लिए हैं। स्त्री को स्वीकृति कौन देगा ? क्या नगरवधू के यहाँ जाने से पहले पुरुष अपनी स्त्री से स्वीकृति प्राप्त करता है ? पुरुष और स्त्री के लिये ये पृथक मापदण्ड बनाने वाला कौन है ? कौन निर्धारक है इस सबका ? यदि केवल पुरुष ही... तो मैं उसके एकाधिकार को स्वीकार नहीं करती। हमारी एक समान आवश्यकतायें हैं... हमारे एक समान अधिकार भी होने चाहिये। नैतिकता और अनैतिकता के मापदण्डों में स्त्री-पुरुष के मध्य यह पक्षपात अनैतिक है। समाज में प्रच्छन्न ही सही किंतु यदि नगरवधू स्वीकार्य है तो जिगोलो क्यों नही हो सकते"?

पुरुष ने शांत होते हुये कहा – "काम की सीमायें अनन्त हो सकती हैं किंतु दाम्पत्य जीवन की सीमायें निर्धारित हैं। सभ्य समाज इन सीमाओं के सम्मान की अपेक्षा करता है। यह अपेक्षा जब पूर्ण नहीं हो पाती तो दाम्पत्य जीवन को टूटना और बिखरना होता है"।

स्त्री ने गम्भीर होते हुए कहा – "आप हमें धमकी दे रहे हैं ?... बिना यह विचार किए हुये कि पुरुष की तरह ही स्त्री की भी आवश्यकताएं हैं। पुरुष अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये नीति, नियम और व्यवस्थायें गढ़ सकता है तो स्त्री को ही उससे वंचित क्यों रखना चाहता है ? क्या यह स्त्री के प्रति अत्याचार नहीं है..."?

विवाद समाप्त होने का नाम नहीं ले रहा था तो रति से रहा नहीं गया, वे उनके समक्ष साक्षात हुईं, बोलीं – "निश्चित ही... किसी भी स्त्री को वही सारे अधिकार प्राप्त हैं जो किसी पुरुष को। विधाता ने किसी के साथ कोई पक्षपात नहीं किया है"।

स्त्री ने आश्चर्य से रति की ओर देखकर पूछा – "आप कौन"?

"रति ... मैं रति हूँ" – रति ने उत्तर दिया।

स्त्री ने पुरुष की ओर विजयी मुस्कान से देखा फिर बोली – "सुना ? सुना आपने ? रति क्या कह रही हैं"?

पुरुष चुप रहा, उत्तर रति ने दिया – "नगरवधू पुरुष समाज की अहंकारिक व्यवस्था का भाग है तो जिगोलो स्त्री समाज की"।

पुरुष ने हर्ष मिश्रित आश्चर्य से रति की ओर देखा। स्त्री जैसे आकाश से धरती पर आ गिरी हो, उसने प्रतिवाद किया – "किंतु सभ्य समाज की स्थापना के समय से ही पुरुषों ने अपने लिये वैकल्पिक व्यवस्थायें बना रखी हैं। उन पर अंगुली भले ही उठती रही हो किंतु कामव्यापार को रोका भी तो नहीं जा सका कभी। क्या यह पक्षपात नहीं है"?

रति ने बड़े ही धैर्य से उत्तर दिया- "किंतु कोई विकल्प कभी समाधान का स्थान नहीं ले पाता। आपको समाधान के बारे में विचार करना चाहिए न कि विकल्प के बारे में"!

स्त्री को आश्चर्य हुआ – "समाधान ! क्या है हमारी समस्या का समाधान ? आप ही बताइए भला"!

रति ने कहा – "हमारी काम समस्यायों का समाधान स्वयं हमारे पास ही होता है कहीं अन्यत्र नहीं। स्त्री-पुरुष मिलकर समाधान खोजें तो इसकी प्राप्ति सहज है किंतु किसी एक पक्ष के लिये दुरूह। स्त्रियों को अपने पति के समक्ष मुखरित हो समस्या को सावधानी से चिन्हित कर आगे बढ़ना चाहिये, समाधान हो जाएगा। कामक्रीड़ा के क्षणों में स्वार्थी हो जाना ही दूसरे के आनन्दातिरेक का बाधक तत्व है। दोनों पक्ष यदि अपने लिए नहीं बल्कि दूसरे के लिए काम करें तो आनन्दातिरेक की प्राप्ति से कोई स्त्री

कभी वंचित नहीं हो सकती। ध्यान रखिए काम एक कला भी है और एक विज्ञान भी। इसमें पारंगत होने की अपेक्षा है"।

इतना कहकर रति अदृश्य हो गईं।

स्त्री कुछ देर शांत बैठी रही फिर उठकर पति का हाथ पकड़कर बोली – "वर्षा होने वाली है... हम तट पर चलें..."

अब तक सहज हो चुके पुरुष ने आत्मविश्वास से भरकर मुस्कराते हुये स्त्री की केशराशि को सहलाया, फिर कहा – "चलो"!

***

१७. ये रिश्ते

लड़के को चोट लगी तो दर्द से कराह उठी लड़की, और जब दिल दुखा लड़की का तो तड़प उठा लड़का। बचपन में देखी लैला-मजनू की नौटंकी के कुछ दृश्य आज भी याद हैं मुझे। मगर मोहब्बत की दीवानगी और इबादत के ऐसे किस्से अब कहाँ ? आदिवासी गाँव कुआँपानी की किशोर लड़की ने कभी नौटंकी नहीं देखी अलबत्ता लैला-मजनू की अमर मोहब्बत के बारे में ज़रूर सुन रखा था उसने। कुआँपानी, यानी बस्तर के ऊँचे पहाड़ों की तलहटी में बसा छोटा सा आदिवासी गाँव।

जंगल में 'हिन्नी' सी घूमने वाली निर्भीक किशोरी को एक दिन कॉलेज में एडमीशन के लिए एक बड़े से गाँवनुमा कस्बे में जाना पड़ा। कॉलेज की इत्ती बड़ी बिल्डिंग देखकर ही लड़की के होश उड़ गये। जैसे-तैसे लड़की ने एडमीशन फ़ॉर्म लिया... पर अब परेशान, कैसे भरूँ इसे ?

लड़के को लगा कि लड़की को किसी के सहयोग की आवश्यकता है। ऐसे अवसर को भला कौन लड़का हाथ से जाने देना चाहेगा ? लड़का पास आया, बड़ी विनम्रता से बोला- "लाइए, मैं भर दूँ"!

जंगल की हिन्नी कुछ सकुचाई फिर बिना कुछ बोले हाथ का फ़ॉर्म लड़के के सुपुर्द कर दिया। लड़का पूछता रहा, लड़की बताती रही, और फ़ॉर्म भरता गया। जब तक फ़ॉर्म पूरा हुआ तब तक लड़के के पास हिन्नी की सारी जानकारी आ चुकी थी। अपने गाँव से बाहर के किसी मरद से यह उसकी पहली मुलाकात थी। मुलाकात अगले दिन फिर हुई, उसके अगले दिन भी हुई... रोज हुई... होती रही।

चार साल हो गए मुलाकात होते। इस बीच लड़की ने अपनी ज़िन्दगी के पाँच मौसम देख लिए थे। पाँच मौसमों की अलग-अलग तासीर ने लड़की की मोहब्बत को पर दे दिए थे। जंगल की हिन्नी के पास अविश्वास का कोई कारण नहीं था, एक दिन उसने लड़के को सौंप दिया अपना सब कुछ। पहाड़ी नदी बह चली पूरे वेग से। बह चली... बहती रही... बहती रही... खूब बही...।

फिर एक दिन लड़की मैना बन गई। बस्तर की गाने वाली मैना। वह लड़के को एक गीत सुनाने लगी... मधुरगीत, सहज प्रेम का मधुर प्रेमगीत। लड़के को गीत अच्छा नहीं लगा। उसे रिश्तों के व्यापारिक स्वरूप में गहरा यकीन था। उसकी रगों में बहने वाले ख़ून में कुशल व्यापारी के रिश्ते निभाने की दक्षता थी।

लड़की गीत गाती रही... उसने सुन रखा था कि मैना पक्षी अपने जीवन में केवल एक ही जोड़ा बनाते हैं इसलिए जंगल की हिन्नी पूरे यकीन और आत्मविश्वास के साथ गीत गाती रही।

एक दिन लड़के ने मैना को बुलाया, मैना उड़ कर झट उसके पास आ गई। लड़का उसे लेकर पास के एक जंगल में गया। लड़की आज छठा मौसम देखने वाली थी। जंगल में पहुँचते ही लड़का एक बहेलिया बन गया। उस दिन मैना ने अपनी ज़िन्दगी में पहली और अंतिम बार पतझड़ को देखा... उसकी पीड़ा का अनुभव किया... और फिर उड़ गयी... एक अनन्त यात्रा पर।

बस्तर की हिन्नी जीवन के सभी मौसमों के अनुभवों की सीमा से दूर चली गई। इतनी कम उम्र में ही वह खिलौनेबाजों के हाथ का निर्मम खिलौना बन कर ख़त्म हो चुकी थी।

अगले दिन समाचार पत्र में लोगों ने पढ़ा- "जंगल में एक अज्ञात लड़की की लाश पाई गई"। ऐसे समाचार पढ़ने के अभ्यस्त हो चुके लोगों ने गहरी सांस ली, लड़के की जाति को गन्दी सी गाली दी और सब कुछ भूल जाने की कोशिश करने लगे।

पोस्टमार्टम करने वाले डॉक्टर ने लड़की की निश्चल देह को एक बार देखा फिर भरे कण्ठ से बुदबुदा कर अपने आप से कहा –"जंगल, शिकार और शिकारियों के ये रिश्ते कोई हुक़ूमत कभी ख़त्म नहीं कर सकती"।

बस्तर की मैना तो उड़ गई। पर उसकी आत्मा आज भी मुस्कराकर पूछती है शिकारी से- "सुनो, मोहब्बत के चमन में पाँच ही मौसम काफ़ी नहीं थे क्या"?

***

१८. आँधी

विकास की बहती आँधी उसे उड़ा ले गई। उसने अभी-अभी किशोरावस्था से युवावस्था में कदम रखा ही था कि उसे विकास का चस्का लग गया। आज उसने एक सस्ती सी जींस पहनी, उबले हुये नमकीन चने के साथ देशी ठर्रा गटका और बीड़ी न पीकर सिगरेट पी।

मुम्बइया विकास टी.वी. से होता हुआ एक छोटे से आदिवासी ग्राम जकरबेड़ा तक पहुँच गया था। वीडियो फ़िल्मों की सहज उपलब्धता ने तो आधुनिक विकास में और भी चार चाँद लगा दिए थे। वनोपज की उपलब्धता, मनरेगा में काम की गारण्टी, सस्ता अनाज... उसे जीने को और क्या चाहिए!

वह ग्यारहवीं तक स्कूल भी गया था। विकास का असली चस्का तो स्कूल से ही लगा था उसे। वहाँ सुन्दर-सुन्दर लड़कियाँ थीं, स्कूल यूनीफ़ॉर्म की शर्ट में वे और भी उत्तेजक लगती थीं। कोण्डागाँव के मार्केट में निकलता तो जैसे वहाँ बस्तर नहीं बम्बई का सा नज़ारा दिखाई पड़ता। पहले से ही उत्तेजक लड़कियों के लिबास उन्हें और भी उत्तेजक बना देते थे। एक दिन मंगलू ने उसे वीडियो पर एक ब्ल्यू फिल्म दिखायी थी उसके बाद से तो जैसे उसके ऊपर भूत ही सवार हो गया था।

जकरबेड़ा के सोमैया की बेटी सुबह स्कूल के लिए निकली थी, शाम तक घर वापस नहीं आई तो पिता को चिंता हुई। वह बेटी को खोजने निकला, सोचा पहले स्कूल जाकर देखूँ। वह स्कूल की दिशा में बढ़ चला। एक जगह उसे झाड़ियों के पास बेटी का स्कूल बैग दिखाई दिया तो सोमैया की धड़कनें बढ़ गईं। वह झाड़ी की ओर बढ़ा, देखा, वहाँ घसीटे जाने के कुछ निशान भी थे। सोमैया का जैसे ख़ून सूख गया, शरीर निर्जीव सा लगने लगा। निशान का पीछा करते-करते वह कुछ ही दूर और गया तो उसे अपनी बेटी भी दिखायी पड़ गई।

वह झाड़ियों में पड़ी थी, अर्धनग्न! सोमैया चीख पड़ा, रोते हुए बेटी के पास जाकर उलट-पुलट कर देखा तो पता चला कि वह तो एक लाश थी।

सोमैया की बेटी आधुनिक विकास की लाश हो गई थी। झाड़ी के पास उसे कामोत्तेजनावर्द्धक दवा की शीशी भी पड़ी मिली। उसने जैसे-तैसे पुलिस तक ख़बर भेजी और ख़ुद बेटी के शव को जंगली जानवरों से बचाने के लिये गोद में लेकर बैठ गया।

सोमैया रात भर झाड़ियों में बेटी के शव को अपनी गोद में लिए रोता रहा। गाँव के ही विकाशशील युवक ने बेटी को बुरी तरह नोच डाला था। उसने अपने बचाव के लिये जमकर संघर्ष भी किया किंतु अंततः तीन युवकों के आगे हार गई। विकासशील युवकों ने लड़की की इज़्ज़त भी लूटी और जान भी ले ली।

धरमू ने सुनील और जगतू के साथ मिलकर देशी ठर्रा पी थी। ठर्रा पीने के बाद तीनों की आँखों में लड़कियों के शरीर के अंग ही अंग तैरने लगे थे। नहीं, अब और नहीं... कुछ करना ही होगा। उन्हें लड़की चाहिये थी, अभी... तुरंत। लेकिन कहाँ मिलेगी लड़की!

तभी उन्हें दिखायी दी सोमैया की चौदह साल की बेटी ! बस, शराब के नशे ने तीनों युवकों के विकास की गति को तीव्रता प्रदान की और वे लड़की को झाड़ियों में खींच ले गए।

अगले दिन सबने अख़बार में पढ़ा – "आदिवासी छात्रा से बलात्कार कर हत्या"।

उस समय विकासशील युवकों के लिये आदिवासी या गैर आदिवासी का भेद अर्थहीन था। उन्हें एक स्त्री चाहिए थी जिसमें वे अपने कामस्वप्नों को पूरा कर पाते। वे कामस्वप्न जो उन्हें टी.वी. विज्ञापनों, फ़िल्मों के आइटम साँग में नाचती लड़कियों, सहज उपलब्ध ब्ल्यू-फ़िल्मों, पोर्न पत्रिकाओं, स्कूल आती-जाती शर्ट पहने लड़कियों और मार्केट में घूमती लड़कियों के लिबासों से उभरती कामोत्तेजना ने दिखाए थे। आज वे युवक उस आँधी में उड़ जाने के लिये बेताब हो चुके थे जिसे वे वर्षों से अपने आसपास देखते आ रहे थे। युवकों ने विकास को अपने आसपास देखा था, बस, वह केवल उनके लिए ही नहीं था किंतु आज वे भी विकसित होने की प्रतिज्ञा कर चुके थे। उन्हें एक अदद स्त्री चाहिए थी, वह कोई भी हो सकती थी, आदिवासी या कोई अन्य भी... जो भी उस वक्त वहाँ से निकली होती। उस वक्त उन्हें एक अदद स्त्री चाहिए थी... वह तीन साल की बच्ची से लेकर सत्तर साल की वृद्धा तक कोई भी हो सकती थी।

युवकों की विकास थ्योरी से बेख़बर अख़बार वालों ने जो "आदिवासी छात्रा से बलात्कार कर हत्या" की ख़बर छापी उससे आदिवासियों और ग़ैरआदिवासियों के बीच घृणा की एक और कंटीली बाड़ उग आई। राजनीतिज्ञों ने अपनी आँखें उन्मीलित कर घटना की ओर दृष्टिपात किया फिर उसके वजन को नापा-तौला और नये आन्दोलन की रूपरेखा बनाने में जुट गए... बिना इस बात पर गौर किए कि बलात्कारियों में से दो लोग आदिवासी भी थे।

***

१९. कुपुरा

यह ईसवी सन् इक्कीसवीं सदी की शुरुआत थी। तब ग्रेसी की आयु थी मात्र बारह वर्ष जब उसने अपने पिता कुर्वा मसांजा की बाड़ी में जंगल से चर कर वापस आईं उन बारह गायों को आराम से रौंथियाते देखा जिन्हें ग्रेसी के बदले में लाया गया था। ग्रेसी को उन गायों से ईर्ष्या हुई, उसने बड़ी हसरत से उन्हें देखा फिर ईश्वर से शिकायत की कि उसने ग्रेसी को गाय क्यों नहीं बनाया था। कुर्वा मसांजा की व्यावहारिक दृष्टि में बारह वर्ष की ग्रेसी की कीमत बारह गायों से किसी भी स्थिति में कम नहीं हो सकती थी। एक दिन उसने ग्रेसी के विरोध के बाद भी एक बुज़ुर्ग से ग्रेसी का कुपुरा तय कर ही दिया।

ग्रेसी ने बुज़ुर्ग के साथ जाने से मना किया तो कुर्वा ने समझाया – "तुम अनोखी नहीं हो, तंजानिया के सुकुमा लोगों में सदा से ऐसा ही होता आया है। कुपुरा हमारी परम्परा है। और फिर वह आदमी कुपुरा में मुझे पूरी बारह गायें दे रहा है। मैं यह मौका कैसे हाथ से जाने दूँ"?

ग्रेसी जंगल में भाग जाती और सोचती रहती – वह बूढ़ा आदमी मुझे जबरन अपने साथ ले जाएगा। रात-दिन जब भी उसका मन होगा वह मेरे साथ खेलता रहेगा। किंतु मेरे मन का क्या ?

रात होने से पहले ग्रेसी अपनी झोपड़ी में वापस आती और माँ से पूछती – "माँ ! सुकुमा लोगों में लड़कियों का कोई मन नहीं होता क्या ? मैं उस बूढ़े के साथ नहीं जाऊँगी"।

माँ समझाती – "ऐसा ही तो होता आया है। मेरा भी तो कुपुरा हुआ था, तेरे पिता ज़बरन उठा लाए थे मुझे। बाद में मेरे पिता को तीन सुअर दिए थे और दो गाय। और हाँ! शराब भी दी थी। शुरू में मुझे भी अच्छा नहीं लगा था लेकिन बाद में धीरे-धीरे सब ठीक हो गया। सबके साथ ऐसा ही होता है। तुम्हें भी बाद में अच्छा लगने लगेगा"।

ग्रेसी ने कहा – "मैंने कब मना किया, ठीक है, वह बारह गाय देगा किंतु वह बूढ़ा है"।

माँ ने अंतिम बात कही – "तो कोई जवान लड़का तेरे लिए हमें बारह गायें क्यों देगा भला"?

ग्रेसी चुप हो गई, वह किसी बुज़ुर्ग के साथ पूरी ज़िन्दगी गुज़ारने के पक्ष में बिल्कुल नहीं थी।

एक दिन वह बूढ़ा आदमी ग्रेसी के घर आया, कुर्वा मसांजा के साथ बहुत देर तक बातें करता रहा फिर बैठकर दोनों ने शराब पी। ग्रेसी ने देखा तो चुपके से बाहर निकल गई। फिर जब बहुत देर बाद वापस आई तो कुर्वा ने उसकी जम कर धुनाई कर दी। ग्रेसी चीखती रही, उसका बाप उसे पीटता रहा।

बारह वर्ष की ग्रेसी ने ज़िद कर ली कि वह किसी बुज़ुर्ग से शादी नहीं करेगी। उसकी ज़िद उसकी देह पर कुर्वा का क्रोध बनकर आए दिन बरसने लगी। अंततः एक दिन ग्रेसी का कुपुरा हो ही गया। एक बुज़ुर्ग आदमी ग्रेसी को उसके पिता के घर से ज़बरन उठा ले गया। हाँ ! पिता के घर से उठा ले गया। मनुष्य समाज में घर या तो पिता का होता है या फिर पति का। कुर्वा मसांजा के घर पर ग्रेसी मसांजा का कोई अधिकार नहीं था।

बुज़ुर्ग पति ग्रेसी को रोज मारता और बलात्कार करता। बारह गायों के बदले में बारह वर्ष की ग्रेसी मात्र ग्यारह महीनों में ही विधवा हो गई। उसका बुड्ढा पति एक रोड एक्सीडेण्ट में मारा गया किंतु तब तक ग्रेसी गर्भवती हो चुकी थी।

बुड्ढे पति के मरने पर ग्रेसी बहुत रोई... पिछले ग्यारह महीनों में इतनी मार खाने के बाद भी ग्रेसी को इस तरह फूट-फूट कर रोते हुए किसी ने नहीं देखा था। पूरे गाँव ने उसे पहली बार फूट-फूट कर रोते हुए देखा था। बड़ी-बूढ़ियों ने ग्रेसी के आँसुओं में बुड्ढे के प्रति प्रेम देखा तो उसकी छोटी बहन बिरहा ने भय की काली छाया। ग्रेसी की समस्या यह नहीं थी कि बुड्ढा मर गया बल्कि यह थी कि उसके गर्भ में पलने वाले बच्चे को वह पालेगी कैसे ? उसका दुःख उस अजन्मे के लिए था जो बुड्ढे के पाप से बोया गया था।

***

२०. पत्नी का बंगला

//एक// जन्म दिन

जैसे-जैसे वह आभिजात्य होती गयी वैसे-वैसे अपने पति से बड़ी होती गयी और फिर एक दिन ऐसा भी आया जब उसका पति छोटा होते-होते इतना छोटा हो गया कि उसकी आँखों से पूरी तरह ओझल हो गया।

बहुत बड़ी हो गयी अभिजात्य पत्नी ने एक दिन अपने बेरोजगार पति को घर से बाहर का रास्ता दिखा दिया। अभिजात्य पत्नी की आयु, देह-सौन्दर्य, उच्चशिक्षा और उच्चपद के अहंकार ने उसे सातवें आसमान पर रखे किसी सर्वोच्च सिंहासन पर आरूढ़ कर दिया था जहाँ समाज के पारम्परिक नियमों और नैतिक मूल्यों का कोई स्थान नहीं हुआ करता।

सातवें आसमान की सत्ता स्वच्छन्दता और निरंकुशता से पोषित हो पल्लवित-पुष्पित होती है। तीन युवा होते बच्चों की अम्मा का आचरण अभिजात्य होते ही किसी षोडशी कामिनी की तरह उद्दाम हो चला था। एक्कीसवीं शताब्दी के भारतीय समाज में जिस तरह उच्चाधिकारी और मंत्री सिंहासनारूढ़ होते ही सर्वज्ञानी हो जाते हैं उसी तरह मध्यमवर्गीय असंस्कारी स्त्री उच्चाधिकारी बनते ही अम्मा से किसी षोडशी कामिनी में रूपांतरित हो जाती है। आयु को धता बताते यह उसका कायारूपांतरण है जिस पर वह इतरा-इतरा कर और झूम-झूम कर चलती है। उसकी चाल, परिधान, श्रृंगार, भाषा, व्यवहार और लटके-झटके अहंकार की नौका में बैठकर कोलम्बस बनने का स्वप्न देखते हैं और भारत तो छोड़िये उनका आचरण इस धरती के जीवों जैसा भी नहीं रहता, वे स्वयं को किसी परग्रही एलियन जैसा प्रदर्शित करती हैं।

क्या गाँव क्या नगर, विकास का एक अन्धड़ सा चल पड़ा है। परम्परागत सभी पुरा-निकष एक-एक कर तोड़े जा रहे हैं ताकि आधुनिकता और स्वतंत्रता के नव-निकष स्थापित किये जा सकें। अन्धड़ विभेद नहीं कर पाता आम और बबूल में, उसके तो मार्ग में जो भी आता है उखाड़कर फेक दिया जाता है।

पत्नीत्यक्त बेरोज़गार पति ने न जाने क्या सोचकर इस बार अपना जन्मदिन आभिजात्य हो गयी पत्नी के साथ मनाने के लिए निश्चय किया था। ट्रेन के स्लीपर क्लास में अपनी बर्थ पर लेटे-लेटे बेरोज़गार पति ने स्वप्न देखने से पहले एक बार विचार किया कि क्या वह अपनी पत्नी के साथ बिताये मधुर क्षणों की स्मृति में स्वप्न देख सकने का अधिकारी है भी या नहीं। उसके भीतर से एक निरीह पति ने एकांत-बल के प्रभाव से कहा – हाँ-हाँ क्यों नहीं ! यह अधिकार तो हर पीड़ित पति को रहता ही है, और फिर अभी तक इण्डियन पीनल कोड में इसके विरुद्ध कोई धारा भी तो नहीं बनी।

स्लीपर क्लासगामी पति ने अपनी फ़्लाइटगामिनी गगनविहारिणी पत्नी के उन दिनों को स्मरण किया जब वह ग्रेज़ुएट भी नहीं थी और मैथ्स पढ़ने के बहाने अक्सर उसके घर डोरे डालने पहुँच जाया

करती थी। तब ज़ीरोफ़िगरधारिणी गौरवर्णी कन्या की रुचि मैथ्स में कम, मैथ्स पढ़ाने वाले में अधिक हुआ करती थी।

अंततः एक दिन ज़ीरोफ़िगरधारिणी के बिछाए हुए गुलाबी डोरों के जाल में मैथ्स के सारे अंक भरभरा कर धराशायी हो ही गये।

ट्रेन भारतीय थी, इसलिए कैटरपिलर की गति से चलने की अभ्यस्त थी, किंतु उसके स्लीपर क्लास की लोअर साइड बर्थ पर लेटा हुआ पति शुद्ध ग्रामीण भारतीय होते हुये भी तीव्र गति से स्वप्न देखने में मशगूल था।

ज़ीरोफ़िगरधारिणी के साथ बीते दिनों के कई दृश्य गुलाब की पंखुड़ियों की तरह झरते रहे और शुद्ध ग्रामीण पति सुख के खोये हुए पलों को पकड़ने की चेष्टा करता रहा। उसे बचपन के वे दिन भी याद आये जब वह तितली पकड़ने के चक्कर में एक बार झरबिरिया के ऊपर गिर पड़ा था। अनायास ही उसके मुँह से निकल पड़ा - उफ़्फ़! ये तितलियाँ ऐसी क्यों होती हैं ?

उसे चेत हो आया, उसने अपने आसपास की बर्थ पर दृष्टि डाली, कहीं किसी ने सुन तो नहीं लिया?

ट्रेन सहारनपुर से आगे निकल चुकी थी। पत्नीत्यक्त पति ने गंतव्य पर पहुँच कर आगे के कार्यक्रम की योजना बनायी। ट्रेन तो अलस्सुबह पहुँच जायेगी। स्टेशन से पत्नी के बंगले तक ऑटो से पहुँचने में एक घण्टा लगेगा। तब तक अपने तीसरे क्रम के "वो" के बिस्तर से उठकर पत्नी भी अपने कपड़े बदल चुकी होगी, ब्रश भी कर चुकी होगी और चाय की प्रतीक्षा कर रही होगी। पति ने सोचा, चाय वह ऑटो रोककर रास्ते में ही कहीं पी लेगा। थापा को तो मैडम तीन कप बनाने के लिए कहेगी भी नहीं तो बेचारा बनायेगा कहाँ से !

घर पहुँचकर उसे बाहर के पोर्च में रुककर अपनी पत्नी के "वो" के जाने की प्रतीक्षा करनी होगी। उसके जाते ही वह अन्दर प्रवेश करेगा, और रास्ते से ख़रीदा हुआ फूलों का एक बुके पत्नी को देगा। पत्नी सब कुछ भूलकर मुस्करायेगी, अपने किए पर पश्चाताप करेगी, कहेगी – "मुझे माफ़ कर दो न ! भटक गयी थी मैं। चलो जल्दी से स्नान कर लो, आज मैं पूरे दिन तुम्हारे साथ रहूँगी, शाम को शॉपिंग के लिए चलेंगे..."।

"ओ भाई जी! कहाँ जाना है ?" – एक सहयात्री ने उसे हिलाया तो उसकी नींद खुली। चौंक कर देखा, उजाला हो चुका था और ट्रेन अपने अंतिम स्टेशन पर खड़ी थी। स्लीपर क्लास में रात भर सोते रहे यात्री एक बार फिर से भीड़ बन गए थे, सबको उतरने की ज़ल्दी थी। वह मन ही मन मुस्कराया – भारत में हर किसी को हमेशा ज़ल्दी रहती है। रिज़र्वेशन करवाते समय ज़ल्दी, ट्रेन में चढ़ते समय ज़ल्दी, फिर

उतरते समय भी ज़ल्दी और इतना ही नहीं, ऑटो पकड़कर घर जाने की भी ज़ल्दी । जहाँ हर किसी को इतनी ज़ल्दी रहती है वहीं फ़ाइलों की गति इतनी धीमी क्यों होती है ? यह एक अद्‌भुत रहस्य है ।

सोचते-सोचते पति ने अपना थैला उठाया और ट्रेन के दरवाजे की ओर बढ़ गया । अपने डब्बे में से उतरने वाला वह अंतिम व्यक्ति था ।

ऑटो वाले को किराया देकर पति ने अपनी पत्नी के बंगले की ओर कदम बढ़ाये । वह प्रफुल्लित था, उसे लगा कि जैसे वह पहली बार उससे मिलने जा रहा है और आज उसे प्रपोज़ करेगा ।

अयँ ! दरवाज़े पर ताला ?

पति का सारा उत्साह कपूर की तरह उड़ गया । किंकर्तव्यविमूढ़ पति वहीं ज़मीन पर बैठ गया । कल जब पति ने पत्नी को वाट्स-एप पर अपने आने का सन्देश दिया था तब तो उसने कुछ नहीं कहा था । कहाँ गयी होगी ? आज तो रविवार है !

पड़ोस में रहने वाले एक अन्य अधिकारी के सेवक ने आकर सूचना दी – "मैडम रात की फ़्लाइट से मुम्बई चली गयी हैं, आपको सूचना देने के लिए कहा है"।

दोनों के बीच दो मिनट तक मौन रहा, यह मौन 2014 में नेपाल में आये भूकम्प के पश्चात् के मौन जैसा था । पति चुप रहा । पड़ोसी अधिकारी के सेवक ने अंतिम सन्देश दिया – "साहब ने कहा है कि आप उनके यहाँ चल कर रुक सकते हैं । मैडम परसों रात की फ़्लाइट से आ जायेंगी, उन्हें अचानक मुम्बई जाना पड़ गया"।

पति ने मरियल स्वर में कहा – " नहीं, मुझे कुछ और काम है, तुम जाओ, अपने साहब से मेरा धन्यवाद कहना"।

पति की इच्छा हुयी कि वह वहीं दहाड़ मार कर रोये और पूरी दुनिया को बता दे कि यह दुष्टा कल भी तो बता सकती थी मुझे । इस तरह धोखे में क्यों रखती है मुझे हर बार"?

निराश, हताश, पराजित, अपमानित पति ने अपने आँसू पोंछे, पत्नी के बंगले के पार्क के नल से अपना मुँह धोया और धीरे-धीरे परिसर से बाहर आ गया ।

उस शहर में अब उसे एक मिनट भी रुकने की इच्छा नहीं थी । ऑटो पकड़कर स्टेशन पहुँचते ही पति ने दो कप चाय पी फिर टिकट घर की ओर चल दिया । वापसी का रिज़र्वेशन तुरंत सम्भव नहीं था । जनरल टिकट के लिए भीड़ को देखकर उसे घबराहट हुयी । वह वहाँ से तुरंत बाहर निकलकर सड़क पर आ गया ।

अपनी पत्नी के शहर में सुबह से पागलों की तरह घूमते हुये दोपहर हो चुकी थी । वह सड़क पर पैदल भटक रहा था कि इतने में एक ऑटो रिक्शा ठीक उसके पास आ कर रुका, ड्राइवर ने बाहर की ओर झाँक कर पूछा – " कहाँ चलना है सर ?"

थका-हारा पागलों सा भटकता पति चुपचाप ऑटो में बैठ गया। ड्राइवर ने फिर पूछा – "सर ! कहाँ जायेंगे ?"

इस बार पति के मुँह से अचानक ही पत्नी के घर का रटा-रटाया पता सरक कर बाहर गिर पड़ा। ड्राइवर ने ऑटो को गति प्रदान की।

परिसर के बाहर ही ऑटो छोड़कर अनमने भाव से पति ने परिसर में निरुद्देश्य प्रवेश किया। भरी धूप में उसने यूँ ही पूरे परिसर का चक्कर लगा डाला। अचानक उसने देखा कि वह अपनी पत्नी के बंगले के सामने खड़ा है, बंगले के दरवाजे पर ताला नहीं है और अन्दर से दो लोगों के हँसने-खिलखिलाने की आवाजें आ रही हैं।

पति उन दोनों आवाजों से अच्छी तरह परिचित था। तभी उसे याद आया कि आज तो उसकी पत्नी के तीसरे क्रम के "वो" का भी जन्म दिन है।

दिन भर के भूखे पति की टाँगों में अचानक शक्ति का संचार हुआ, वह तीव्र गति से बाहर की ओर भागा। उसे लग रहा था कि अब वह इसी तरह दौड़ते हुये अपने गाँव तक चला जायेगा और फिर कभी अपनी पत्नी के शहर नहीं आयेगा। किंतु परिसर से बाहर आते-आते उसकी दम फूलने लगी। उसने एक ऑटो वाले को आवाज़ दी। ऑटो पर बैठते ही हाँफते हुये पति ने कहा – "रेलवे स्टेशन"।

//दो// भूख

कई साल पहले ऋषिकेश में गंगा के तट पर जब उस सन्यासी ने कहा था कि कलियुग में विशाल वट वृक्ष की छाया नहीं होती तो उसकी दार्शनिक भाषा मेरी समझ में नहीं आ सकी और अब जब कि मैं सन्यासी की बात को प्रत्यक्ष घटित होते देख रहा हूँ, मेरे लिए वट वृक्ष ही अशुभ हो गए हैं। छायाविहीन वट वृक्ष की कहानी सुनाने से पहले प्रसंगवश यह बताना आवश्यक है कि राजा विक्रमादित्य के समय पत्नी अपने पति की छाया हुआ करती थी। छाया हो जाना उन्हें उनके अधिकारों, समर्पण और अनुराग की अनुभूति कराना हुआ करता था। समय हुआ तो राजा विक्रमादित्य स्वर्ग सिधार गए, समय अपनी गति से चलता रहा और हिमालय में गंगोत्री ग्लेशियर अपने अंग-प्रत्यंग समेटता रहा। मुम्बई वालों को राजा हरिश्चन्द्र के स्थान पर नागिन पसन्द आने लगी और फ़िल्मों से लेकर धारावाहिक तक नागिनों के किरदार निभाने के लिये स्त्रियों में खींचतान होने लगी।

पत्नी अब पति की छाया नहीं होती, छाया होना पुरुषवादी दासता का प्रतीक हो गया है इसलिए पत्नी अब केवल स्त्री होती है जिसके पास उसका अपना शरीर होता है, अपना मन होता है और अपने निर्णय होते हैं।

उसकी पत्नी भूखी है, शायद पिछले कई जन्मों से। वह एक उच्च अधिकारी है और सदैव भूखी रहती है। उसका शरीर भूखा है, उसका मन भूखा है, वह जन्म-जन्म की बुभुक्षिता है।

फ़िल्मी कहानी की तरह पति-पत्नी के बीच सचमुच का तीसरे क्रम वाला एक "वो" भी है जो उसकी भूखी पत्नी की अदम्य भूख मिटाने के लिये अहर्निश तत्पर रहता है।

पति-पत्नी के मध्य जब भी कोई "वो" आ जाता है तो पति जिस दुर्गति को प्राप्त होता है वह अवर्णनीय है, किंतु यही नियम है, सदा से ऐसा ही होता आया है। इस पत्नी का पति भी अवर्णनीय दुःख की स्थिति को प्राप्त हो चुका है। पति-पत्नी विवाहविच्छेद की बात तो करते हैं किंतु "पहले आप, पहले आप" के लखनवी अन्दाज़ की ज़िद में साल-दर-साल पहाड़ सा वक़्त गरियार बैल की तरह चलता जा रहा है।

तरुणी पत्नी जो कि एक उच्च अधिकारी थी, धीरे-धीरे पतुरिया भी हो गई। पद और पैसे के लिए कुछ भी करने के लिए तैयार रहने वाली पत्नी अब एक स्वर्गलोक की अप्सरा बन चुकी है जिसके ऊपर देवताओं के मनोरंजन का महत्वपूर्ण दायित्व है।

यह उसकी सुन्दर पत्नी का तीसरा "वो" है जो उसकी पत्नी से खेलता रहता है। पत्नी अब एक खिलौना बन चुकी है, एक ऐसा खिलौना जिससे खेलने का अधिकार उसके पति को छोड़कर हर उस व्यक्ति को है जो उसकी भूखी पत्नी को पद, प्रतिष्ठा और पैसा दिला सके।

उन दोनों ने प्रेम विवाह किया था किंतु प्रेम का ज्वार अधिक समय तक नहीं रह सका और अब पति-पत्नी की संज्ञायें उन्हें मुँह चिढ़ाने लगीं हैं। ज्वार के दिनों में उन दोनों ने मिलकर तीन बच्चे भी पैदा किए थे जो अब बड़े हो गए हैं और अपनी धनवान माँ के चरित्र को निर्विकार भाव से देखते रहते हैं। बच्चों के लिए माँ के धन का आकर्षण माँ के चरित्र की अपेक्षा कहीं अधिक प्रबल है।

कई महीने बाद जब पति एक दिन अपनी पत्नी के सरकारी बंगले में घुसा तो पड़ोस के बंगलों में रहने वालियों ने उसे मुस्कराते हुए विचित्र दृष्टि से देखा। पति ने दृष्टि नीचे करके बंगले में प्रवेश किया जहाँ तीसरा "वो" उसकी पत्नी के साथ भोजन की मेज पर बैठा हुआ था।

भोजन समाप्त हुआ तो पत्नी अपने "वो" के साथ बाहर चली गई। लक्ष्मण थापा ने अपनी स्वामिनी के पति के पास आकर पूछा – "सर ! आपके लिए खाना बना दूँ ?"

पति ने अस्वीकृति में धीरे से सिर हिला दिया। थापा के सिर झुकाकर जाते ही पति ने पूरी बेशर्मी के साथ किचन में जाकर कुछ खोजने का प्रयास किया फिर उसने अपने लिए चाय बनाई। दो दिन की यात्रा करके अपनी पत्नी के घर पहुँचे पति की भूख ने उसे फ़्रिज़ खोलने के लिए बाध्य किया। शुद्ध शाकाहारी पति ने एक ट्रे में रखे हुए अण्डे देखे, मन में जैसे एक और भू-स्खलन हुआ और उसने झट से फ़्रिज़ बन्द कर दिया।

झुंझलाए पति ने बिस्किट की तलाश में पत्नी का पर्स खोला जिसमें पेट्रोलपम्प की पर्ची, प्रिगनेंसी टेस्ट किट, कण्डोम के पैकेट्स और दो-दो हजार के कुछ नोटों के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं मिला।

बेरोजगार पति ने भरपूर आत्मग्लानि के साथ किसी तरह चाय अपने गले से नीचे उतारी फिर थापा को अपने जाने के सूचना दी और रेलवे स्टेशन की ओर प्रस्थान कर दिया।

//तीन// जोरदार माल

षोडशी कामिनी बनी तरुणी स्त्री ने स्किन कलर के लेगीज़ पर गुलाबी रंग का दैहिक सौन्दर्य झलकाता हुआ एक कुर्ता धारण किया और टहलती हुयी अपने 'वो' के बंगले की ओर चल पड़ी।

समाज की दृष्टि में वे उच्चशिक्षित थे और हाई प्रोफ़ाइल भी। एक पचपन साल के हाई प्रोफ़ाइल विधुर प्रौढ़ आदमी ने अपनी पुरानी रखैल को गाँव में छोड़ दिया और एक पैंतीस साल की हाई प्रोफ़ाइल तरुणी ने अपने बेरोजगार पति को घर से निकाल दिया। दोनों हाई प्रोफ़ाइल लोग एक ही महकमे में देश और समाज की सेवा किया करते थे। सुबह का ब्रेकफ़ास्ट हो या लेट नाइट डिनर, दोनों को एक साथ देखा जा सकता था। रोज शाम को दोनों हाई प्रोफ़ाइल एक साथ टहलने जाया करते ताकि रिश्वतखोरी के प्रभाव से बढ़ी ट्राईग्लिसरायड के अतिक्रमण को देह से छाँटा जा सके। हाई प्रोफ़ाइल आदमी अपनी तीन कुँवारी बेटियों के लगभग समान आयु वाली हाई प्रोफ़ाइल तरुणी के साथ अपने रिश्ते प्रगाढ़ करने में लगा रहता। हाई प्रोफ़ाइल तरुणी के अपने बेरोजगार पति से तीन बच्चे भी थे जो हॉस्टल में रहकर पढ़ते थे और अपनी माँ के भेजे हुए पैसों से अपने मित्रों के सामने अपनी नवधनाढ्यता का भरपूर प्रदर्शन किया करते।

तरुणी आत्मविश्वास से लबालब थी, उसने पुराने पैमानों के ख़िलाफ़ बगावत कर दी थी और नए-नए कीर्तिमान बनाने के लिए कमर कसकर खड़ी हो गई थी किंतु हाई प्रोफ़ाइल तरुणी के बेरोजगार पति को रात-रात भर नींद नहीं आती, वह एक ही बात सोचता रहता कि जो उच्चशिक्षित और हाई प्रोफ़ाइल लोग अपने रिश्तों के प्रति निष्ठावान नहीं हो पाते वे देशसेवा के प्रति कितने निष्ठावान होते होंगे ?

सामान्य नाक-नक्श वाली उस स्त्री ने तरुणाई में भी अपने दैहिक आकर्षण को बनाए रखा था। लार बहाते अतृप्तकाम पुरुष उसके आगे-पीछे घूमते तो उसकी तरुणाई और भी गर्व से भर उठती। शीघ्र ही सचिवालय और सत्ताधीशों के बीच वह एक "जोरदार माल" के नाम से जानी जाने लगी।

उच्च अधिकारी बन जाने के बाद उसके मन में यह धारणा और भी बलवती हो चुकी थी कि व्यक्तिगत पहुँच से कुछ भी सम्भव है। अब उसका अगला लक्ष्य था अपने विभाग के शीर्ष पद को कैसे भी हथियाना। राजपत्रित अधिकारियों की नियुक्तियों में एक-एक उम्मीदवार से पाँच लाख से पच्चीस लाख तक की कमाई का आकर्षण निम्न-मध्यम आय वर्ग की पृष्ठभूमि से आई उस तरुणी के लिए अद्भुत् था।

पहली बार जब उसने एक उम्मीदवार से पाँच लाख की रिश्वत ली तो पति ने समझाया कि हराम की इस कमाई से उसके बच्चों का ख़ून ख़राब हो जाएगा। पत्नी को लगा कि पति का पौरुष ईर्ष्या से जल उठा है, अन्दर ही अन्दर उसके स्त्रीत्व को आत्मसंतोष की प्राप्ति हुई। पति तड़प कर रह गया था।

काम निकालना है तो गधे को भी बाप कहना होगा – इस पुरानी कहावत को वह बचपन से सुनती आई थी। उसने इस बात को गाँठ में बाँध लिया कि अपने स्वार्थ के लिए किसी भी सीमा तक जाने

में कोई बुराई नहीं इसीलिए जब वह बड़ी हुई तो उसने काम निकालने के लिए गधों को बाप ही नहीं पति भी बनाना शुरू कर दिया। भागते हुए भारत में वह किसी से पीछे नहीं रहना चाहती थी।

उसके पास अपने तर्क थे – स्त्री यदि समर्थ है तो मुक्त यौन सम्बंध उसी के लिए वर्ज्य क्यों ? पाँच-दस रानियों और सैकड़ों रखैलों के लिए राजाओं पर तो कभी किसी ने उँगली नहीं उठाई। और फिर किसी पुरुष के साथ सोने में बुराई ही क्या है ! योरोप में तो कब की यह दकियानूसी समाप्त हो चुकी है।

काम निकल जाने के बाद जोड़ा बदल देने के मामले में जल्दी ही उसने पुरुषों के कान काटने शुरू कर दिए। विधायक जी से शुरू हुई अंतरंगता मुख्यमंत्री के निजी सचिव से होते हुए मुख्यमंत्री और राज्यपाल तक पहुँच चुकी थी। तरुणी को आगे बढ़ने के लिए व्यक्तिगत काबिलियत से अधिक राजनीतिक पहुँच पर भरोसा था और राजनीतिक पहुँच के लिए सेक्स से अधिक विश्वसनीय उसकी दृष्टि में और कुछ भी नहीं था।

जहाँ चाह वहाँ राह बनाती हुई हाई प्रोफ़ाइल तरुणी अंततः एक दिन अपने लक्ष्य तक पहुँच ही गई। अब वह अपने विभाग के सर्वोच्च पद पर विराजमान थी। इस बीच रिश्वत से जोड़े हुए धन से उसने डोईवाला में एक बड़ा सा फ़ार्म ख़रीद कर आलीशान बंगला भी बनवा लिया।

एक दिन डोईवाला के लोगों ने नए फार्महाउस के केयर टेकर से ऐसी ख़बर सुनी कि सब उस ओर दौड़ पड़े। डोईवाला के बंगले में लोगों की भीड़ लगी थी, पुलिस अधिकारी सफेद कपड़े में लिपटी एक लाश को गाड़ी में रखने का उपक्रम कर रहे थे कि तभी एक युवक ने पुलिस अधिकारी के सामने आ कर कुछ कहना शुरू किया। अचानक धाँय की आवाज हुई और युवक ज़मीन पर गिरकर तड़पने लगा। किसी ने उसके सिर में गोली मार दी थी।

लोगों ने देखा कि ठीक उसी समय बंगले से एक कार तेजी से बाहर की ओर निकल गई थी।

***

२१. विकास

महाराज घुरऊ ने स्पेस कंट्रोम रूम में घुसते ही टीवी ऑन कर दिया।

"... ग्लोबल वार्मिंग के कारण गंगोत्री ग्लेशियर निरंतर सिकुड़ता जा रहा है" – समाचार वाचिका के ये शब्द ज्योंही महाराज घुरऊ के कानों में पड़े कि उनकी छठी इन्द्रिय ने उनके अन्दर उत्सुकता की एक लहर उत्पन्न कर दी। उन्होंने तुरंत सेवक को आदेश दिया – "मिशन शुक्र के स्पेस शटल से सम्पर्क कर डॉ. कौटिल्य पाणिग्रही से कहो कि शनि ग्रह के ग्लेशियर्स की तस्वीरें खींचकर तुरंत यहाँ भेजें। हम अपनी प्रजा को बताना चाहते हैं कि धरती की तुलना में शनि के ग्लेशियर्स कितनी तेजी से लुप्त हो रहे हैं, इसलिए चिंता करने की कोई आवश्यकता नहीं है"।

स्पेस शटल में बैठे वैज्ञानिक डॉ. पाणिग्रही ने महाराज का हुक्म सुना तो हक्के-बक्के रह गए। उन्होंने कुछ कहना चाहा किंतु महाराज घुरऊ के मुँहलगे सेवक ने उन्हें बुरी तरह डाँट कर चुप कर दिया।

महाराज घुरऊ के सेवक की डाँट से डॉ. पाणिग्रही के साथ-साथ मिशन शुक्र का स्पेश शटल, जिसे चन्द्रमा की ओर लॉन्च किया गया था, थरथरा उठा। डॉ. पाणिग्रही ने जैसे-तैसे स्थिति पर नियंत्रण किया।

महाराज घुरऊ ने कंट्रोल रूम के सेवक को नर्तकी प्रस्तुत करने के लिए आदेश दिया और फिर मसनद के सहारे अधलेटे होकर बस्तर की देशी महुआ का सुरापान करने लगे।

थोड़ी ही देर में नर्तकी ने स्पेस कंट्रोल रूम में प्रवेश किया। महाराज घुरऊ प्रसन्न हुये, उन्होंने नर्तकी की ओर लुब्ध दृष्टि से देखते हुए उसका परिचय पूछा। नर्तकी ने काँपते हुए बताया – "महाराज घुरऊ जी! हम शीला की छोटी बहन मुन्नी बाई हैं... बलिया घराने से हुज़ूर की ख़िदमत में पेश हुए हैं"।

महाराज घुरऊ की त्योरियाँ चढ़ गयीं, उन्होंने सेवक की ओर आग्नेय दृष्टि से देखा फिर बोले – "तू अभी तक हमें गोपालगंज का मामूली विधायक ही समझता है क्या? अरे मूर्ख! मैं इस बचे-खुचे आर्यावर्त का प्रतापी सम्राट महाराज घुरऊ हूँ और विश्व प्रसिद्ध इस स्पेस शटल सेण्टर का स्वामी भी। मेरे लिए बलिया घराने की एक मामूली सी नर्तकी लाने का साहस कैसे किया तुमने? जाओ, और अभी मेरे स्तर के अनुरूप आल इण्डिया मेडिकल साइंस की किसी सुन्दर सी साइंटिस्ट को पकड़ कर लाओ। आज हम सांइटिस्ट का नृत्य देखेंगे"।

घुरऊ महाराज के सेवक ने सिर झुकाया और "सर!" बोलकर बाहर निकल गया। अचानक महाराज घुरऊ के मन में उत्सुकता उत्पन्न हुई, बुध ग्रह की नर्तकियाँ कैसा नृत्य करती होंगी! वे तरह-तरह की कल्पना में डूब गए, उन्होंने अपने नेत्र बन्द कर लिए। नर्तकियों की विभिन्न मुद्रायें उनकी स्मृति में एक-एक कर आने लगीं –भारत के कालबेलिया नृत्य से लेकर अरब के बेली नृत्य तक की स्मृतियों ने उन्हें खूब गुदगुदाया किंतु वे किसी निर्णय पर नहीं पहुँच सके। तभी उन्हें डॉ. पाणिग्रही का स्मरण हो आया।

सोचा, क्यों न उन्हें सन्देश भेज कर बुध ग्रह पर होने वाले नृत्य समारोह की सचित्र रिपोर्ट भेजने का हुक्म दे दिया जाय।

महाराज घुरऊ ने घण्टी बजाई, सेवक उपस्थित हुआ तो उन्होंने हुक्म सुनाया – "डॉ. पाणिग्रही को अभी सन्देश भेजो कि बुध ग्रह पर होने वाले नृत्य समारोह की सचित्र रिपोर्ट कल सुबह तक मेरे पास भेजें"।

सेवक ने अत्यंत दीन-हीन भाव से कहा – "किंतु क्षमा करें महाराज ! बुध ग्रह पर तो कोई मानव बस्ती ही नहीं है, और फिर चन्द्रमा की ओर छोड़े गए शुक्र मिशन के शटल से बुध ग्रह के नृत्य की रिपोर्ट ..."।

महाराज घुरऊ बीच में ही चिंघाड़ उठे – "हमें ज्ञान देने की आवश्यकता नहीं है बेवकूफ़ आई.ए.एस.! महाराज हम हैं, तुम नहीं। जितना कहा जाय उतना किया करो, हमें सुबह तक पिछले पाँच सालों में बुध ग्रह पर होने वाले सभी नृत्य समारोहों की सचित्र रिपोर्ट चाहिए। इस बार हम धनतेरस के अखिल आर्यावर्त्त समारोह के अवसर पर एम्स की सुन्दर साइंटिस्ट को बुधग्रह की नृत्यशैली में अपने स्पेस कंट्रोल रूम में नचवाना चाहते हैं। जाओ ! नृत्य की तैयारी करो। विकास के लिए अब हमें वैश्विक स्तर से आगे बढ़कर ब्रह्माण्डीय स्तर पर कार्य करना होगा। और हाँ ! बनारस की चन्दा बाई के कोठे का तबलची तबला अच्छा बजाता है, उसे भी बुला लेना"।

***

२२. ई हय बनारस हौ बाबू !

ज्योतिर्मय को बनारस आए हुए अभी कुछ ही दिन हुए हैं इसलिए यहाँ के रास्तों और गलियों से उसका परिचय लगभग शून्य है । कहीं जाने-आने के लिए उसे जी.पी.एस. का उपयोग करना पड़ता है । उस दिन हमें सम्पूर्णानद विश्वविद्यालय से सारनाथ जाना था । टूटे-फ़ूटे और धूल भरे रास्तों से होते हुए हम किसी तरह सारनाथ पहुँचे । हमारे फेसबुकिया मित्र देवेन्द्र पाण्डेय घर के दरवाज़े पर हमारी प्रतीक्षा करते हुए मिले । फेसबुकियानी मित्रता के साक्षात होने का रोमांच कुछ और ही होता है । हम प्रथम बार मिले किंतु सुपरिचितों की तरह ।

घर के प्रांगण में एक सेवानिवृत्त गुरुजी लिट्टी-चोखा के उपक्रम में गोइँठा सुलगा रहे थे । कभी फेसबुक की चर्चा चौपाल पर परिहास में पाण्डेय जी से लिट्टी-चोखा की बात हुई थी । इतनी पुरानी बात उन्हें स्मरण थी । यानी प्रांगण से ही पाण्डेय जी ने हमें मोहित करना शुरू कर दिया था ।

हम घर के अन्दर पहुँचे, जल-पान के पश्चात् पाण्डेय जी ने अपनी दोनों बेटियों से परिचय कराया । उनकी एक बेटी पाश्चात्य दर्शन में पीएच.डी. कर रही है । विषय को लेकर चर्चा शुरू हुई (चर्चा के विषयों को लेकर ब्राह्मण लाचार है, वह या तो पढ़ाई-लिखाई की बात करेगा या फिर भोजन की) । मैंने पाश्चात्य और भारतीय दर्शन के तुलनात्मक अध्ययन की चर्चा छेड़ दी । चर्चा में ज्योतिर्मय भी सम्मिलित हुआ, दर्शन में उसकी रुचि देखकर पाण्डेय जी ही नहीं मैं भी प्रभावित हुआ । उसने अभी-अभी इलाहाबाद से इण्टरमीडिएट किया था ।

बनारस के बारे में चर्चा हुई तो ज्योतिर्मय ने कह दिया कि वह जल्दी से जल्दी बनारस छोड़कर इलाहाबाद जाना पसन्द करेगा । बातों ही बातों में बिना किसी लाग-लपेट के ज्योतिर्मय ने यह भी कह दिया कि बनारस उसे बिल्कुल भी अच्छा नहीं लगा, यहाँ है ही क्या सिवाय टूटी-फूटी सड़कों, धूल और गन्दगी के । उसकी बात से मुझे थोड़ा संकोच हुआ लेकिन पाण्डेय जी सहज ही नहीं बने रहे बल्कि बीच-बीच में हँसते भी रहे ।

जो कभी लिट्टी-चोखा का स्वाद ले चुके हैं उनके लिये यह एक विशिष्ट भोजन है जिसके प्रति उनकी दीवानगी देखने लायक होती है । लिट्टी-चोखा की उपलब्धि के लिये बड़े धैर्य और श्रम की आवश्यकता होती है । मुझे यह आध्यात्मिक साधना से पूर्व की प्रारम्भिकसाधना से कम नहीं लगती ।

बातों-बातों में समय का पता ही नहीं चला । टेबल पर भोजन लगाया जा चुका था । लिट्टी-चोखा, दाल-चावल और खीर के अतिरिक्त एक कटोरे में पृथिवी की एक दुर्लभ चीज भी थी – “शुद्ध देशी घी” ।

स्वादिष्ट भोजन के पश्चात् हमारा कार्यक्रम कुछ देर विश्राम करके बौद्धनगरी के भ्रमण का था । धूप तेज थी और पाण्डेय जी प्रतिश्याय से पीड़ित थे फिर भी बड़ी रुचि एवं आत्मीयता से उन्होंने हमें सभी स्थानों का भ्रमण करवाया ।

बौद्धस्तूप, हिरण उद्यान एवं उसके पास बौद्ध चैत्य के अवशेष देखकर ज्योतिर्मय को अच्छा लगा । इतना अच्छा लगा कि उसने माँ को भी वहाँ लाकर घुमाने की इच्छा प्रकट की । पाण्डेय जी को प्रवेश का एक मार्ग दिखाई दिया गोया किसी एक्सप्रेस ट्रेन की भीड़-भाड़ वाली जनरल बोगी में एक पैर टिकाने की जगह मिल गई हो । उन्होंने ज्योतिर्मय से चर्चा करनी शुरू की - "बनारस अद्‌भुत् नगर है । यहाँ माया है और माया से मुक्ति का मार्ग भी है । यहाँ ठग हैं और सत्यनिष्ठा के धनी भी हैं । यहाँ अज्ञानी हैं और महाज्ञानी संत भी हैं । ज्ञान, भक्ति, विद्या, तंत्र, मंत्र, नृत्य, संगीत .... सब कुछ है इस भोले बाबा की नगरी में । अपनी-अपनी वांछना के अनुरूप की गई साधना से सभी को वांछित फल की प्राप्ति होती है । यहाँ विरोधाभास मिलेंगे, साधना के मार्ग में अवरोध मिलेंगे, "वाटर" जैसी फ़िल्मों की कथावस्तु मिलेगी और कीचड़ भी मिलेगा... किसी साधक की प्रतीक्षा में, जो आकर उसमें कमल उगा सके । किसी को कीचड़ देखकर घृणा हो सकती है, उसी कीचड़ को देखकर किसी का मन प्रसन्न हो सकता है कि उसे कमल उगाने के लिये उपयुक्त स्थान मिल गया है"।

ज्योतिर्मय को गणित और पैरालल वर्ल्ड से लेकर बायोटेक्नोलॉजी, दर्शन और नाट्य कला तक में रुचि है । उसे स्टीफ़ेन हॉकिंस पसन्द हैं तो कणाद और पाणिनि भी पसन्द हैं । पाण्डेय जी की बातें ज्योतिर्मय के मन-मस्तिष्क को प्रभावित करती जा रही थीं और वह मंत्रमुग्ध होकर उनकी एक-एक बात को बड़े ध्यान से सुनता जा रहा था ।

चलते-चलते हम तीनों एक चौराहे पर पहुँच गए थे । पाण्डेय जी ने रुकने का संकेत किया फिर बोले –"ज्योतिर्मय! इस चौराहे को देखो, यहाँ से एक सड़क मणिकर्णिका घाट जाती है, दूसरी व्यापारियों से भरे बाजार की ओर, तीसरी बाबाविश्वनाथ मन्दिर की ओर और चौथी सड़क वारांगनाओं के मोहल्ले की ओर । पूरे विश्व में बनारस के अतिरिक्त ऐसा अद्‌भुत् चौराहा और कहीं नहीं मिलेगा । पथिक को चुनना है कि उसे किस मार्ग पर चलना है"।

ज्योतिर्मय द्विवेदी को बनारस के इस अद्‌भुत् चौराहे की गुरुता के बारे में जानकर विस्मय हुआ । बनारस में इससे अद्वितीय और क्या हो सकता है भला ! अंततः ज्योतिर्मय को कहना ही पड़ा – "बनारस के बारे में मेरी धारणा को आपने पूरी तरह बदल दिया है । आज के बाद मैं यह कभी नहीं कहूँगा कि बनारस में कुछ नहीं है । अब मैं बनारस में और भी घूमना चाहूँगा ।"

समय हो गया था, हमें वापस संपूर्णानन्द विश्वविद्यालय जाना था । विदायी के समय ज्योतिर्मय ने पूरी श्रद्धा के साथ पाण्डेय जी के चरण स्पर्श किये । बड़ी आत्मीयता से आशीर्वाद देते हुये पाण्डेय जी बोले - "ई हय बनारस हौ, ई हय वाराणसी हौ .... सरल भी ई हय हौ, क्लिष्ट भी ई हय हौ । जा बाबू ! फेर अइहा बनारस घूमै, मामा जी से हमार नम्बरवा ले लिहा"।

***

२३. मायने

कैलेण्डर का वार्षिक चक्र पूरा होने को है, पिछले लगभग आधे दशक से कुछ तलाशती हुई आँखों में अब स्थायी शून्यता घर कर गई है... । बचपन ने कब किशोरावस्था को लाँघ कर युवावस्था में प्रवेश कर लिया, साराह को पता ही नहीं चला । केवल साराह ही नहीं, उस जैसे लगभग एक लाख बच्चों के बचपन और किशोरावस्था को निगल गया आइसिस का युद्ध ।

अपना घर, अपने गाँव की गलियाँ, घर के ठीक पीछे फैली पर्वत श्रृंखला, मोहल्ले के बच्चे, दिन भर खेलना और फिर बड़े-बूढ़ों से डाँट खाना... यह सब छोड़कर कोई बच्चा अपने देश सीरिया से भागना नहीं चाहता था किंतु भागना ही उनकी नियति में लिखा था... वह भी अपना ऐसा कुछ छोड़कर... ऐसा कुछ खोकर... जो अब कभी नहीं मिलेगा । साराह की एक सहेली जॉर्डन नहीं आ सकी, वह भीड़ के साथ बहती हुई लेबनान पहुँच गई थी । जॉर्डन में साराह को उसकी बहुत याद आती है... उसके छोटे भाई की भी ...जो बहुत शरारती था ।

सीरिया में इस्लाम के नाम पर छह सालों में जो हुआ... जो हो रहा है उसके बाद उम्र को धता बताकर बड़ी ढिठाई से आगे बढ़ गयी लाखों बच्चों और किशोर-किशोरियों की ज़िन्दगी अब कुछ सवाल पूछने लगी है ।

साराह की आँखों में खिलौनों, तितलियों और सपनों के स्थान पर अब एक समुद्र रहने लगा है । उम्र की पगडण्डियों पर चलती हुई बुज़ुर्गियत उसके पास तक आ पाती उससे पहले ही दूर-दूर तक फैले एक दर्दीले आसमान ने उसे अचानक बुज़ुर्ग बना दिया है । न जाने कितनी चिंताओं से घिरी वह सोचती रहती –पता नहीं किस हाल में होंगी माँ... और दादा-दादी !

भीड़ के साथ जो बच्चे जॉर्डन चले गए... शायद उनकी किस्मत कुछ अच्छी थी, उन्हें वहाँ भोजन के साथ खिलौने और पुस्तकें भी मिल जाती हैं । साराह स्कूल जाना चाहती है... किंतु दीगर रिश्तों की तरह किताबों से भी उसका रिश्ता बहुत पहले छूट गया था... किंतु उसे उम्मीद है कि उसे भी जॉर्डन के किसी स्कूल में दाख़िला मिल ही जाएगा ।

सीरिया सुलगा... सुलगता रहा, फिर जला... जलता रहा । लगभग आधे दशक तक जलता रहा । जलते हुए सीरिया का धुँआ एशिया, अफ़्रीका और योरोप तक फैलता चला गया । लेबनान जैसे न जाने कितने देशों की सड़कों पर सीरिया की न जाने कितनी ज़िन्दगियाँ साँसें ले रही है ।

//दो//

अब तो ख़ुद्दारी भी दगा दे गयी... ख़ैरात के भरोसे हो गई है ज़िन्दगी । ये पहाड़ सी ज़िन्दगी यूँ कब तक खड़ी रहेगी सिर उठाकर ? दीग़र मुल्क... दीग़र लोग... ख़ैरात... पता नहीं कब कौन फिर दगा दे जाये ! औरत होने की सीमाएँ और भी सिकुड़ गईं हैं यहाँ ।

वह जवान है, आँखों के सामने पति का ख़ून कर दिया गया, बच्चों को लेकर भागना पड़ा... मुल्क से बाहर... किधर भी... तब यह होश नहीं था कि कहाँ जाना है। भीड़ के जत्थे जिधर चले उधर ही लोगों की किस्मत भी चली गई।

आइसिस के युद्ध में दमस्कस तो एक भुतहा शहर हो गया है, ख़ूबसूरत मकान अब खण्डहर हो गए हैं और सूनी सड़कों पर कोई जानवर भी निकलना पसन्द नहीं करता। भीड़ के साथ बहती हुई वह लेबनान के किनारे जाकर लगी। वहाँ उसका भीख़ माँगकर ज़िन्दा रहने का सहारा तो हो गया किंतु... इन बच्चों का क्या होगा ? इनका भविष्य क्या लेबनान की सड़कों पर अपने दुर्भाग्य की यूँ ही इबारतें लिखेगा?

नन्हें बच्चों को नहीं पता कि अब ये अपने मुल्क में नहीं बल्कि एक पड़ोसी मुल्क में हैं... और इनका परिचय है सीरियन शरणार्थी ! यह बचपन अभी तो बेख़बर है लोगों की निगाहों से... किंतु शीघ्र ही उन्हें इस बात का अहसास हो जाएगा कि वे बाकी लेबनानियों जैसे नहीं हैं... उनकी ज़िन्दग़ी बाकी लोगों से बिल्कुल अलग है... जो दुःख देती है और कई सवाल भी पूछती है। आइसिस के इस्लाम के पास इन जैसे हजारों नन्हें मुन्नों के किसी भी सवाल का है कोई ज़वाब ?

//तीन//

वह एक लड़की है, सीरियाई लड़की जो लेबनान की सड़कों पर रोज अपने लिए एक ठिकाना खोजती है और जिसे एक ही रात में औरत बना देने पर आमादा हैं न जाने कितने मर्द। दस साल की बच्ची औरत-मर्द के ज़िस्मानी रिश्तों को समझने लगी है। वक़्त ने उसे और उस जैसी न जाने कितनी बच्चियों को बहुत कुछ सिखा दिया है। बच्चियों के पास भूखा पेट है और मर्दों के पास पैसे हैं जिनसे वे दुनिया की कोई भी चीज ख़रीद सकते हैं।

एक नौ साल की बच्ची पिछले तीन दिनों से ख़ामोश है, उसे एक पन्द्रह साल के मर्द ने ब्रेड के बहाने औरत बना दिया था। अब उस बच्ची के लिए ज़िन्दगी, भूख, रिश्ते और ब्रेड के मायने बदल गए हैं। ये अर्थ उसे दर्द और दहशत से भर देते हैं।

सूरज डूबते ही ठण्ड बढ़ गई है, लेबनान के सीरियाई शरणार्थी शिविर के बच्चे कुछ घास-फूस और लकड़ियाँ चुन कर ले आए हैं। अलाव जला तो और भी लोग खिंचे चले आए। दस और नौ साल की दोनों बच्चियाँ अलाव से दूर एक शिविर से सट कर बैठी हैं... ठंड के बावज़ूद आग उन्हें अपने पास बुलाने की हिम्मत नहीं कर पाती। दोनों बच्चियाँ ठिठुर रही हैं।

यह सर्द रात तो कट जाएगी किसी तरह... किंतु लाखों सीरियाई लोगों की सर्द किस्मत को एक आम ज़िन्दगी जैसी गर्माहट कब मिल पाएगी... कौन जाने ?

सीरिया है एक सवाल... इस्लाम के सामने ! सीरिया है एक सवाल... घातक हथियारों की तिज़ारत करने वाले मुल्कों के सामने ! सीरिया है एक सवाल... दुनिया भर के बुद्धिजीवियों के सामने ! ग़ैर-मुस्लिमों की ज़िन्दगी की क्या कोई कीमत नहीं इस धरती पर ? दस और नौ साल की औरत बन चुकी यज़ीदी बच्चियों की आँखों में दहशत है और उनके हृदय दर्द में गहराई तक डूबे हुए हैं।

***

२४. अधिकार

सात दिसम्बर दो हजार सत्रह का दिन आस्ट्रेलिया के निवासियों के लिए उनके जीवन का सर्वाधिक सुखद दिन रहा। आस्ट्रेलिया समलैंगिक यौन सम्बन्धों का अधिकार प्राप्त करने वाला दुनिया का छब्बीसवाँ देश बन गया है। पूरे आस्ट्रेलिया में उत्सव का वातावरण है। लोग नाच रहे हैं, एक-दूसरे को बधाइयाँ दे रहे हैं। कुछ लोग तो इस अधिकार को प्राप्त करते ही भावुक होकर रो पड़े... अद्‌भुत् वातावरण बन गया है आस्ट्रेलिया का। अब यह ऐतिहासिक दिन आधुनिक सभ्यता में एल.जी.बी.टी.आई. (लिस्बियन, गे, बायसेक्सुअल, ट्रांसज़ेण्डर और इण्टरसेक्सुअल) के अधिकारों के लिए स्वर्णाक्षरों में लिखा जायेगा।

मानव सभ्यता निरंतर प्रगति की ओर अग्रसर है। निश्चित ही भारत के प्रगतिशील बुद्धिजीवी सोच रहे होंगे कि कहाँ ज़ाहिल देश में जन्म लिया उन्होंने। आस्ट्रेलिया में पैदा हुए होते तो कम से कम सच्ची आज़ादी का स्वाद तो चखने को मिलता। ख़ैर छोड़िए ! अब पछताए होत क्या... ! भारतीयों का रोना तो लगा ही रहेगा, हम आपको आस्ट्रेलिया के एक पार्क में लिए चलते हैं जहाँ इन्द्रधनुष समुदाय के एल.जी.बी.टी.आई. लोग ज़श्न मना रहे हैं, अज़ीब-ओ-ग़रीब कपड़े पहने रेनबो लोग एक दूसरे को चूम-चाट रहे हैं और भावुक होकर न्यूज चैनल्स के कैमरों के सामने गहरे मेक-अप मण्डित अपने चेहरों पर बहते आँसुओं को बड़ी सावधानी और नज़ाकत के साथ पोंछ रहे हैं...

कैमरा – "समलैंगिक यौन सम्बन्धों और अप्राकृतिक विवाह का अधिकार प्राप्त हो जाने के बाद अब आपको कैसा लग रहा है"?

रेनबो – "मैं बहुत ख़ुश हूँ, मेरी ख़ुशी का कोई ठिकाना नहीं है, आय हैव नो वर्ड्स टु एक्सप्रेस माय फ़ीलिंग्स. अब हम भी चैन से... और पूरे गर्व से सिर उठाकर जी सकेंगे। अब हम भी अन्य दम्पतियों की तरह बच्चों को गोद ले सकेंगे"।

कैमरा – "क्या आप अपने गोद लिए बच्चों को भी रेनबो समुदाय की ही संस्कृति में ढलना सिखाएँगे"?

रेनबो – "हाँ हाँ... क्यों नहीं! हम चाहेंगे कि वे घूम-घूम कर हर देश के लोगों के साथ हमारी संस्कृति के अनुसार यौन सम्बन्ध बनाएँ और सुखद अनुभव प्राप्त करें। यह एक दिव्य अनुभूति है"।

कैमरा – "मैरिज़ इक्वैलिटी अधिकार प्राप्ति के पश्चात् अब आप लोगों का अगला कदम क्या होगा"?

रेनबो – "या... वेल.. इट इज़ नॉट इनफ़, वी हैव टु डू अ लॉट ऑन एल.जी.बी.टी.आई. राइट्स."

कैमरा – "जैसे"?

रेनबो – "जैसे यह कि हमें पार्लियामेंट में भी अपने प्रतिनिधित्व के लिए लड़ना होगा । दूसरे, रेनबो कम्युनिटी को सम्मान दिलाने के लिए जगह-जगह "काम देवता" के मन्दिर बनवाने होंगे । तीसरे, रेनबो लोगों को अभी भी समाज में नंगे रहने की आज़ादी नहीं मिली है, हम लोग धरती के अन्य जीवों की तरह नंगे विचरण करना चाहते हैं । हमें इसके लिए भी आन्दोलन करने होंगे । चौथे, हमें रेनबो को एक धर्म के रूप में मान्यता दिलानी होगी । पाँचवे, ..."।

कैमरा – "क्या आप लोग अपने लिए एक अलग देश की माँग भी करेंगे"?

रेनबो – "बिल्कुल नहीं, हम दुनिया के हर देश को रेनबो देश बनाना चाहते हैं, इसके लिए हम लोग बहुत परिश्रम करेंगे और पूरी धरती को रेनबो बना देंगे । दुनिया का हर देश हमारा देश होगा"।

कैमरा – "भारत के लोगों के लिए आपका कोई सन्देश"?

रेनबो (मुस्कराकर हाथ हिलाते हुए) – "हाय ! गे, हाय लिस्बियन्स ! हाय... हाय... ! देखो हम जीत गए । आप लोग भी प्रयास कीजिए, हम आपका साथ निभाएँगे, एक दिन आपको भी आज़ादी मिलेगी, उम्मीद पर दुनिया कायम है"।

कैमरा – "आप से इतनी सच्ची अध्यात्मिक चर्चा के बाद मुझे भी बहुत सुखद अनुभूति हो रही है । हमारा जीवन धन्य हो गया । हम फिर मिलेंगे...बाय!"

रेनबो – "हमें भी परम सुख की अनुभूति हो रही है । आपके चैनल के माध्यम से पूरी दुनिया के सामने अपने विचार रखने का अवसर देने के लिए रेनबो समुदाय की ओर से आपकी पूरी टीम को धन्यवाद ! बाय!"

***

२५. पहचान

मोहल्ले के अंतिम छोर पर बने घर में रहने वाली एली फ़र्नाण्डीज़ बहुत संवेदनशील थी । वह मेरी दादी से मिलने अक्सर मेरे घर आया करती और मैं उससे मिलने उसके घर जाया करता । एली को बचपन से देखता रहा हूँ, लोग उसे मनबोयी भी कहते थे... यानी अपने में खोयी रहने वाली । बाद में तो मुझे भी उसका खोये-खोये रहना अच्छा लगने लगा था । सच कहूँ तो एली वह ख़ूबसूरत नज़्म थी जिसे किसी शायर ने डायरी में लिखकर बन्द कर दिया था । वह अक्सर चुप-चुप रहती । जब कोई उससे बात करता तब भी वह चुपचाप केवल सुनती रहती । बस, कभी-कभी बीच में मुस्करा भर देती... बादलों से झाँकते चाँद की तरह ।

एक बार मैंने उससे कहा – "इतना चुप रहना लोगों में तुम्हारे गूँगे होने का सन्देह उत्पन्न कर सकता है... कुछ तो बोला करो"।

वह फिर भी कुछ नहीं बोली, हाँ! अन्दर से एक डायरी लाकर मेरे हाथ में रख कर मुस्करा भर दी । घर जाकर मैंने एली को उसकी डायरी में बोलते सुना ।

छोटे-छोटे ख़ूबसूरत अक्षरों में लिखी एली की डायरी के हर पन्ने से हाई टाइड की गर्जना को स्पष्ट सुना जा सकता था । यह प्रमाण था इस बात का कि एली की चुप्पी और मुस्कराहट कितनी रहस्यमयी थी । उसकी डायरी को एक ही बैठक में पूरी पढ़े बिना उठ जाना मेरे लिए संभव नहीं था । एली का व्यक्तित्व उसकी डायरी में मुखरित हुआ था । मुझे लगा कि मेरे कई प्रश्नों के उत्तर इस डायरी में मिल गये हैं किंतु एली को जानना इतना सरल है क्या!

एली की दैनन्दिनि के प्रथम पृष्ठ की चर्चा से पहले बता दूँ कि शांत स्वभाव की ख़ूबसूरत एली ने जब पहली बार बस्तर का तीरथगढ़ जल प्रपात देखा तो उसका चेहरा ख़ुशी से दमक उठा था । अन्य लोगों की तरह उसके मुँह से "वाओ या लिंडो या गज़ब... या और कोई विस्मयबोधक शब्द नहीं निकला बल्कि उसकी ख़ूबसूरत झील सी आँखों की चमक थोड़ी सी और बढ़ भर गयी थी । उस दिन वह हल्के नीले रंग के सूट में थी । दोनों कलाइयों में रुद्राक्ष की ब्रेसलेट्स और ऊपर की ओर खींच कर बाँधा गया जूड़ा उसे और भी विशिष्ट बना रहा था ।

एली कई दृष्टि से विशिष्ट थी । सफ़ेद, पिंक और हल्का नीला उसके पसन्दीदा रंग थे । यूँ उसके ऊपर कोई भी रंग खिल उठता था । एक दिन भूरे रंग के सूट में देखकर मैंने उससे कहा था – "आज तो आप गिलहरी लग रही हैं"। वह हौले से मुस्करा दी थी ।

उसका मुझसे कॉफ़ी के लिये पूछने का अन्दाज़ भी बहुत ख़ास हुआ करता था । वह अपने दाहिने हाथ के अँगूठे और तर्जनी उँगली से कप की आकृति बनाकर अपनी विस्फारित नीली आँखों से सिर्फ़ इतना पूछती – "लाऊँ"? मैं भी उसी अन्दाज़ में आँखें बन्द कर और सिर को एक ओर हल्के से झुका कर स्वीकृति देता या फिर होठों को ऊपर की ओर सिकोड़कर मना कर देता । एली का यह निःशब्द संवाद भी किसी नज़्म से कम नहीं हुआ करता ।

समाचार पत्रों की ताज़ी घटनाओं पर वह अपनी टिप्पणी ज़रूर देती थी – "हूँ... यह अच्छा नहीं हुआ" या फिर "...यह एक अच्छी ख़बर है" या फिर "...यह बहुत पहले हो जाना चाहिये था"। जब कभी वह गुस्से में होती तो कहती –"लोग दूसरों को कितना बेवकूफ़ समझते हैं... ऐसा नहीं होना चाहिये... बिल्कुल नहीं"।

अपनी दैनन्दिनी के प्रथम पृष्ठ पर एली ने छोटे-छोटे ख़ूबसूरत अक्षरों में लिखा था –"संसार में एली फ़र्नाण्डीज़ नाम की न जाने कितनी लड़कियाँ होंगी; इतनी सारी एलीज़ में से इस एक एली का अस्तित्व और उसकी पहचान क्या है ? पहचान मनुष्य़ की सबसे बड़ी दुर्बलता है... अहं के बोध से परिपूर्ण... मैं स्वीकार करती हूँ कि इस पहचान ने मुझे भी परेशान कर रखा है... मतलब यह कि मनुष्य की दुर्बलताओं से मैं भी मुक्त नहीं। हर व्यक्ति के पास उसकी दो पहचानें होती हैं। एक वह जो उसे समाज देता है और दूसरी वह जो वह स्वयं अपने पुरुषार्थ से निर्मित करता है। आवश्यक नहीं कि समाज की दी हुई पहचान आपकी रुचि के अनुरूप हो, कई बार ये पहचानें आपको परेशान कर सकती हैं... और उनसे पीछा छुड़ाना आपके लिए एक लम्बे संघर्ष का कारण बन सकता है"।

पोर्तोइण्डियन एली को उबला भोजन पसन्द था। उबला भोजन मतलब केवल उबला हुआ ही... कॉण्टीनेण्टल। शायद यह रुचि उसे अपने पुर्तगाली पिता से विरासत में मिली थी। एकदम गोरी-चिट्टी एली की माँ थी दक्षिण भारत की एक साँवली सी महिला। हाँ! वही महिला जिसे लोग पद्मा लक्ष्मी के नाम से जानते थे। कुमारी पद्मा लक्ष्मी मिस्टर फ़र्नांडीज़ के घर में रसोइया थी और उनके छह साल के मातृहीन बेटे की शिक्षिका भी। बाद में पद्मा लक्ष्मी ने उस बेटे की एक बहन को जन्म दिया और दोनों की माँ बन गई।

यह सब पुरानी बातें हैं, बेकरी व्यवसायी मिस्टर फ़र्नाण्डीज़ अब नहीं हैं, श्रीमती पद्मा लक्ष्मी फ़र्नांडीज़ भी नहीं हैं। उनका बेटा पढ़ाई के लिये स्वीडन गया तो फिर कभी भारत वापस नहीं आया। एली फ़र्नांडीज़ इतने बड़े घर में अकेली ही रह गईं। जब तक माँ रहीं, बेकरी का व्यवसाय सँभालती रहीं, उनके जाने के बाद सारी ज़िम्मेदारी एली के कन्धों पर आ गई।

एली अपने सौतेले, एकमात्र भाई एण्ड्रयू के लिये बहुत दिन तक तड़पती रही थी। स्वीडन जाने के बाद कुछ समय तक तो दोनों में पत्रव्यवहार होता रहा फिर एण्ड्रयू ने एली के पत्रों के उत्तर देना कम कर दिया... धीरे-धीर पत्र व्यवहार पूरी तरह बन्द हो गया। एली बाद में भी बहुत दिनों तक एक पक्षीय पत्र लिखती रही, उत्तर की चिर प्रतीक्षा में। एली के व्यक्तित्व पर इस घटना का गहरा प्रभाव पड़ा था।

मातृ-पितृ-भ्रातृ विहीन एली के दो बहुत अच्छे मित्र भी थे – अकेलापन और ब्लैक कॉफ़ी। किताबों से उसे गहरी मोहब्बत थी, जयशंकर प्रसाद की कामायनी को न जाने कितनी बार पढ़ चुकी थी। शरत, शिवानी, आशापूर्णादेवी, भगवती चरण वर्मा आदि उसके प्रिय लेखक थे। ग्रेजुएशन के बाद वह आगे

पढ़ नहीं सकी, किंतु किताबों ने एली को छोड़ने से साफ इंकार कर दिया । वह जब भी बाहर जाती कुछ न कुछ किताबों के साथ लदी वापस आती ।

उसके पैतृक बँगले में माधवीलता का एक सघन कुंज था, एली के बैठने का सबसे प्रिय स्थान । किताबें पढ़ना होता तो वह वहीं जाती... बैठकर कुछ सोचना होता तो भी वहीं जाती । वह उसे बोधिकुञ्ज कहती थी ।

डायरी के एक पृष्ठ पर एली ने लिखा था – "कितना सुन्दर नाम है 'माधवी', कितने सुन्दर हैं इसके पुष्पगुच्छ... और भीनी-भीनी ख़ुश्बू... जी करता है पूरी ज़िन्दगी यहीं बिता दूँ"।

भारत के अन्य नव ईसाइयों के विपरीत एली को नियमितरूप से चर्च जाने में रुचि नहीं थी । पास्टर पीटर और बुज़ुर्ग ज़ोसेफ़ को यह बात अच्छी नहीं लगती थी । पीटर ने उसे कई बार समझाया भी – "देख रहा हूँ मिस एली ! कि आप नास्तिक होती जा रही हैं..."

किंतु एली पर इन बातों का कभी कोई प्रभाव नहीं पड़ता था । वह पूर्ववत शांत ही बनी रहती, गोया मौन होकर कह रही हो – मेरा चर्च तो मेरे भीतर ही है... अन्य कहीं जाने की क्या आवश्यकता?

एक दिन एली ने लिखा –"धार्मिक होने के लिये किसी धर्मस्थल में जाना इतना आवश्यक है क्या? धर्मस्थल में जाने से ही क्या हम धार्मिक और आस्तिक होते हैं ? धर्मस्थल इतने अनिवार्य क्यों हैं"?

अगले दिन उसने पुनः लिखा – "धार्मिक स्थलों में भी अमानुषिक कृत्य होते रहे हैं, पूरे विश्व का इतिहास ऐसी घटनाओं से भरा है । मुझे लगता है कि मनुष्य होने से बड़ा और कोई धर्म हो ही नहीं सकता"।

एक दिन किसी समारोह में किसी स्त्री ने एली से उसकी जाति पूछ दी । एली ने उत्तर दिया था – "स्त्री"। बाद में उसने अपनी दैनन्दिनी में लिखा – "स्त्री की जाति स्त्री ही हो सकती है और उसका धर्म मातृत्व... बस, कुछ और नहीं"।

कभी बंगाल में आई भीषण बाढ़ में हुई त्रासदी से द्रवित हो एली कई महीने तक बंगाल के प्रवास पर रही थी । जाने से पहले उसने मुस्कराकर कहा था – "मैं चर्च जाने वाली हूँ... कई दिनों के लिए"।

मैंने चौंक कर पूछा था – "कई दिनों के लिये... मतलब ? अब चर्च में ही बसने का इरादा है क्या"? उसने इनकार में सिर हिलाया था और उत्तर में दी थी एक निर्मल मुस्कान । तब मैं उसका इरादा समझ नहीं सका था, उसके जाने के बाद बेकरी के अब्दुल्ला ने एक दिन बताया था– "सर ! मैम तो बंगाल चली गईं..."।

पूरे आठ महीने बाद एक दिन एली के दर्शन हुये थे । अस्थिपञ्जर बनी एली कहीं से भी थकी हुई नहीं लगती थी । ग़ज़ब का आत्मविश्वास था उसके अन्दर । मैंने पूछा था – "यह क्या हाल बना रखा है ? बाढ़ तो कब की ख़त्म हो गई... इतने दिन कहाँ लगा दिए"?

वह मुस्कराई, "विभीषिका ख़त्म होने के बाद ही तो काम शुरू होता है रीहैबिलिटेशन का । स्वामी पूर्णानन्द ने मुझे भगा दिया वहाँ से । कह रहे थे कि अब तुम्हें विश्राम की आवश्यकता है । दिन-रात के परिश्रम से तुम्हें कुछ हो गया तो कन्यावध का पाप लगेगा पूरे आश्रम को"।

वह हँस दी, शिशुओं सी निर्मल हँसी उसे दैवीय आभा प्रदान करती थी ।

एली हिन्दू साधुओं के एक आश्रम में रहकर रीहैबिलिटेशन के काम में दिन-रात जुटी रहती थी। उसके क्षीण होते शरीर से चिंतित हो स्वामी पूर्णानन्द ने जैसे-तैसे समझा-बुझाकर उसे वापस भेजा ।

बंगाल से वापस आने के बाद वह प्रायः सस्वर "असतो मा सद्गमय तमसोमा ज्योतिर्गमय..." और "हरिओम तत् सत" बोलने लगी थी । यह उसने वहीं सीखा था । मैंने परिहास किया – "कभी पास्टर पीटर के सामने मत गाइयेगा"।

वह मुस्कराई –"सनातन सत्य सभी अवरोधों को पार कर प्रकट होने की क्षमता से युक्त है"।

मुझे लगा कि मैं एली का नया अवतार देख रहा हूँ । पर यह सच नहीं था । एली को मैंने जाना ही कब कि उसके नये अवतार के बारे में सोच सकूँ । एक दिन मैंने पूछा – "एली! तुम क्या हो... ज़ूविश, क्रिश्चियन या हिन्दू"?

उसने सदा की तरह मुस्कराकर प्रतिप्रश्न किया –"मनुष्य होने के लिये इन सबकी भी आवश्यकता पड़ती है क्या"?

मैंने कहा – "यह समाज की अपेक्षा है । समाज की सीमाएँ होती हैं, इसीलिये समाजविशेष अपने धर्मविशेष के बन्धन से व्यक्ति को सीमित कर देना चाहता है"।

उसने गम्भीर होकर कुछ सोचा फिर पूरी इमानदारी से बोली - "बहुत सी हिन्दू, थोड़ी सी ज़ूविश और थोड़ी सी क्रिश्चियन"।

मैं हँसा – "यह भी ख़ूब रही । यह तो भारतीय नेताओं वाला आचरण है । चर्च, सिनेगॉग या मन्दिर कहीं भी जाने से अब कोई तुमसे कभी नाराज नहीं होगा"।

वह गम्भीर हो गई –"मुझे नहीं लगता कि सनातन सत्य के लिए इन आश्रयों की आवश्यकता है । लोग इन बन्धनों से मुक्त कब हो पायेंगे ! क्या हमारी पहचान चर्च, सिनेगॉग, मस्ज़िद और मन्दिर के बिना सम्भव नहीं"?

"मेरे पिता क्रिश्चियन थे और माँ हिन्दू, अपनी पहचान के लिए अपनी माता या पिता के धर्म के अनुकरण की बाध्यता किसी के लिए क्यों होनी चाहिये? जहाँ तक जीवनशैली और परम्पराओं की बात है तो मैं भारतीय सनातन परम्परा के समीप स्वयं को अधिक पाती हूँ... और क्या किसी भारतीय नागरिक के लिए इतना ही पर्याप्त नहीं है ? किंतु... भारतीय समाज में मेरी पहचान इस रूप में कभी स्वीकार्य नहीं हो सकी"।

मुझे लगा कि अल्पभाषी एली के पास आज बहुत कुछ था कहने के लिए। मैं लगातार एली के चेहरे की ओर देखता जा रहा था, उसके माथे के नीचे की दोनों झीलों में पानी की एक लहर उठ आई थी। उसके हृदय की गहन पीड़ा को सहज ही अनुभव किया जा सकता था।

मैंने धीरे-धीरे कहा – "मैं आपकी पीड़ा को समझ सकता हूँ एली ! आपके इस दुःख में मैं आपके साथ हूँ, कोई उपाय होता तो मैं यह दुःख अपने लिए ले लेता किंतु देखो, समाज एक समूह है... और समूह परम्पराओं से नियंत्रित होते हैं। परम्पराओं का प्रारम्भ तो विवेकपूर्ण होता है किंतु परम्परायें स्वयं में निर्णायक क्षमता नहीं रखतीं। परम्पराओं की परिमार्जक और नियामक शक्तियाँ चिंतकों के पास होती हैं। चिंतक को सूत्रधार भी होना होता है, दुर्भाग्य से भारतीय समाज में आज सूत्रधारों का अभाव है। ...और याद रखना एली! कि आपके जैसे लोग ही समाज में सूत्रधार भी बनते हैं"।

वह कुछ नहीं बोली, चुपचाप उठकर अपने बोधिकुञ्ज में चली गई। जाते-जाते मैंने देखा, नीली झीलों में रक्तिमा उतर आई थी।

कई बार मैं एली से नाराज़ हो जाता था। वह कभी भी, कहीं भी चल देती थी, वह भी दीर्घ प्रवास पर... और जब वापस आती तो अस्थिपञ्जर काया के साथ। मैं नाराज होता, उसे समझाता, बुझाता, झिड़कता। वह मुस्कराकर अँगूठे और तर्जनी से कप बनाकर विस्फारित नयनों से पूछती – "लाऊँ"? तब बात टालने के उसके इस भोलेपन पर मेरी आँखे छलक उठतीं। वह अपना चेहरा मेरी आँखों के समीप लाकर अपनी बड़ी-बड़ी नीली आँखों से पूछती- "क्या हुआ"? फिर अपने विस्फारित नयन झुका कर मानो कहती – "ओह ! सॉरी... आपको दुखाया मैंने"।

"अफ़गानिस्तान में लोगों की हालत अच्छी नहीं है, मुझे जाना होगा" –एक दिन एली की इस घोषणा से मैं डर गया। यह लड़की पागल हो गई है क्या ? मैंने गुस्से में एक-एक अक्षर पर जोर देते हुये कहा – "तुम कहीं नहीं जा रही हो, समझीं"। वह सहम गई और अपने बोधिकुञ्ज में जाकर बैठ गई।

कुछ दिन बाद वह मेरे घर आई, सफेद फूलों के एक बुके के साथ। मुझे मनाने का यह उसका सबसे प्रिय तरीका हुआ करता था। आज सोचता हूँ, एली ने न जाने कितनी बार मनाया होगा मुझे किंतु ऐसा अवसर कभी नहीं आया कि मुझे भी एली को मनाना पड़ा हो कभी।

उसने पास आकर बुके मेरी ओर बढ़ाया। गुस्से में भी एली से बुके न लेने का साहस मुझे कभी नहीं हो पाया। मैंने चुपचाप बुके ले लिया। उसने सिर्फ़ थैंक्स कहा, मेरे सिर पर हाथ फेरा, जैसे कि मेरी माँ हो, फिर दरवाज़े की ओर मुड़ गई।

धीरे से मैं केवल नाम भर पुकार सका – "एली..."

वह घूमकर मुस्कराई, उसके चेहरे पर दृढ़ता थी और नीले नयनों में निर्मलता। उसने हाथ हिलाकर अभिवादन किया और सीढ़ियाँ उतर गई।

एली अफ़गानिस्तान चली गई। किंतु यह उसका अंतिम प्रवास सिद्ध हुआ। एक दिन ख़बर आई कि तालिबानियों ने एली की बड़ी निर्ममता से हत्या कर दी है। जिसने भी सुना, सन्न रह गया। एली जैसी निर्मल और प्यारी लड़की से भी किसी को शत्रुता हो सकती है... एक ऐसी लड़की से जो सदा दूसरों के लिए ही जीती रही ? तालिबानियों का यह कैसा इस्लाम है जो लोगों के प्राणों को क्रूरतापूर्वक छीनकर ही अपनी धार्मिक पिपासा को शांत कर पाता है ? धार्मिक पिपासा यदि इसी तरह शांत हो सकती है तो मनुष्य के लिये ऐसे किसी धर्म की कोई आवश्यकता नहीं।

जब मैं एली के घर पहुँचा तो लोगों की भीड़ लगी थी। अब्दुल्ला बिलख-बिलख कर रो रहा था। वह आर्त्त हो चिल्ला रहा था – "मैं यतीम हो गया..."

पूरी भीड़ रो रही थी और मैं रो कर भी ख़ुश हो रहा था। एली के घर के सामने हर समुदाय के लोगों की भीड़ थी किंतु किसी को एली की जाति या धर्म से कोई मतलब नहीं था। लोगों का बिलखना यह घोषणा कर रहा था कि एली को उसकी पहचान मिल चुकी थी।

एली अफ़गानिस्तान जाकर कभी वापस नहीं आ सकी। पर मैं आज भी रोज एली से बातें करता हूँ और वह आज भी अपने अँगूठे और तर्जनी से कप बनाकर मुस्कराते हुए अपने विस्फारित नीले नयनों से पूछती है – "लाऊँ"?

एली की निर्मम हत्या को मैंने कभी स्वीकार नहीं किया। मेरे लिए वह न कभी मरी थी न कभी मरेगी। जब तक मैं जीवित हूँ, एली जीवित रहेगी। एली की हत्या से व्यथित अब्दुल्ला कुछ दिन तक बेकरी चलाने के बाद पता नहीं कहाँ चला गया। मुझे जब भी एली से बातें करने का मन होता है तो मैं उसके बोधिकुञ्ज में जा कर बैठ जाता हूँ।

***

२६. मुक्त चिंतन की तड़प –"किस ऑफ़ लव" अ रिवोल्यूशन अगेंस्ट मोरल पुलिसिंग

यह किस्सा केर-वनाच्छादित प्रांत 'केरल' का है। बुज़ुर्ग सूरज के झाँकने में अभी छह घंटे शेष थे किंतु किसी ने भी उसके आने की प्रतीक्षा नहीं की, लोग हमेशा की तरह उस दिन भी ज़ल्दी में थे। उल्हइते लोगों ने रात बारह बजे ही बीसवीं सदी को टा-टा बाय-बाय करके भगा दिया था।

सूरज दादा को धरती के आधुनिक मनुष्यों से गम्भीर शिकायत थी। पुराने लोगों के आदर्श 'तमसोमा ज्योतिर्गमय' से प्रतिलोम गमन करते हुए आधुनिक लोगों ने दिन की मर्यादा की तो ऐसा कम तैसी की ही, परिभाषा को भी खण्ड-खण्ड कर डाला था। लोगों को आगे बढ़ने की बहुत ज़ल्दी हुआ करती थी इसलिए उन्होंने तारीख़ बदलने के लिए भोर तक की प्रतीक्षा करना बन्द कर दिया था। रात को जैसे ही बारह बजते कि लोग तारीख़ बदल दिया करते। नया दिन अर्धरात्रि के अन्धकार में ही अपनी यात्रा प्रारम्भ करने के लिए विवश हो जाता। सुबह जब तक सूरज दादा धरती की ओर झाँकते और पशु-पक्षी सो कर उठ पाते तब तक तारीख़ बदल चुकी होती। रात के अंधेरे में बदली हुई तारीख़ का अब कोई गवाह नहीं हुआ करता। सेवानिवृत्त प्रोफ़ेसर शंभूनाथ मिश्र को लगता कि टू-जी घोटाले जैसे न जाने कितने घोटालों के सबूत न मिल पाने का यही परम रहस्य है।

यह इक्कीसवीं सदी का पहला दिन था, कोज्झिकोडे शहर के लोग मौज-मस्ती के मूड में थे। अधर और ललिथा ने भी परिणय सूत्र में बँधने की प्रतीक्षा किए बिना ही एक लिप-लॉप चटका दिया... वह भी पार्क में दिन-दहाड़े।

कोज्झिकोडे के अधर ने फ़्रांस से अपनी शिक्षा पूरी करने के बाद कोच्चि में अपना व्यवसाय स्थापित करना सुनिश्चित किया था। भरपूर ऊर्जा और आत्मविश्वास के साथ अधर ने ललिथा को अपने निर्णय की सूचना दी तो उसके सपनों को जैसे पर लग गए। दोनों एक पार्क में मिले तो आनन्दातिरेक में ललिथा ने अधर को आलिंगन में भर लिया, प्रत्युत्तर में अधर ने भी अपने अधर ललिथा के अधरों से चिपका दिए। सार्वजनिक स्थान में मात्र तेरह सेकेण्ड्स का मुक्त प्रेमालिंगन और लिप-लॉक कोज्झिकोडे में चर्चा का विषय बन गया।

पार्क में कुछ बुज़ुर्ग भी अपने व्यस्त बच्चों के नन्हें-मुन्ने बच्चों को घुमाने-टहलाने के लिए लाए थे, उन्होंने रात्रिचर्या को सूरज की रोशनी में देखा तो उन्हें बुरा लगा। नन्हें कृष्णा ने एक प्रेमी युगल को एक-दूसरे के अधर चबाते-चूँसते देखा तो इसे एक नया खेल समझकर खेलने के प्रयास में अपनी छोटी बहिन रुक्मिणी के होठ चबा डाले। बच्ची इस अचानक हुए आक्रमण से घबरा गई और पीड़ा से चीख उठी। पार्क की घास पर बैठे दादा श्वेतकेतु अय्यर ने बच्ची की चीख सुनी तो दौड़े।

कोज्झिकोडे में इक्कीसवीं शताब्दी कुछ इस तरह आई थी कि उसकी चर्चा महीनों नहीं बल्कि वर्षों तक होती रही थी। वृद्ध अय्यर उस समय तो बच्चों को लेकर घर चले गए किंतु पार्क की घटना से व्यथित हो गए थे। उन्होंने कुछ लोगों के सामने आधुनिक युवाओं के आचरण के प्रति अपनी चिंता व्यक्त की। कुछ लोग प्रेमी युगल के इस अमर्यादित आचरण से क्रुद्ध हो गए और उन्होंने पार्क में जाकर अधर और ललिथा

की धुनाई कर दी। उन्हें पूरा विश्वास था कि भारत में ऐसा कोई कानून नहीं है जो इस उच्छृंखल आचरण को रोक सके। वे भारत की पंगु न्याय व्यवस्था और अतिभ्रष्ट प्रशासन के सामने कोई फ़रियाद ले जाने की अपेक्षा स्वयं ही विक्रमादित्य बन जाने में विश्वास करने वाले लोग थे।

केरल में हुई इस घटना की प्रतिक्रिया पूरे देश में हुई। महाज्ञानियों ने अपने प्रवचन में कहा – "हमें एक-दूसरे की निजता का सम्मान करना सीखना और सिखाना होगा। घर हो या गलियाँ या फिर पार्क, हमें हर कहीं प्रेम और उसके सार्वजनिक प्रदर्शन करने का अधिकार है। यह हमारी इच्छा और अधिकार है कि हम चुम्बन के लिए कौन सा समय और कौन सा स्थान तय करें। इस पर कोई नैतिक या कानूनी प्रतिबन्ध नहीं लगाया जा सकता। जहाँ तक बच्चों पर ऐसे प्रदर्शन के दुष्प्रभाव पड़ने की सम्भावना है तो यह मनुवादियों का केवल एक फासीवादी बहाना है जिसे स्वीकार नहीं किया जा सकता। वास्तव में बच्चों के मस्तिष्क पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव का कारण प्रेमालिंगनबद्ध चुम्बन दृश्य नहीं बल्कि घर में पिता द्वारा माँ के साथ की गई मारपीट के दृश्य हैं"।

राजनीति से दूर रहने वाले आम भारतीयों के लिए फासीवादी शब्द फाँसी पर चढ़ा देने जैसे किसी अर्थ की ध्वनि उत्पन्न करता था इसलिए भारत में इक्कीसवीं शताब्दी के वामपंथियों और विपक्षी दलों के बीच यह शब्द अपने विरोधियों को गाली की तरह स्तेमाल किए जाने के लिए बहुत लोकप्रिय हो चला था। गाँव के लोगों के लिए मुसोलिनी शब्द अपरिचित था किंतु फासी शब्द फाँसी से मिलता-जुलता होने के कारण परिचित सा था और इसीलिए भयकारक भी। इस शब्द की लोकप्रियता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि वामपंथी लोग हर मामले में अपने विरोधियों के लिए फासीवादी शब्द का प्रहार करना सीख चुके थे। इक्कीसवीं शताब्दी के वामपंथियों के लिए यह शब्द किसी उपलब्धि से कम नहीं था। ख़ैर ! अभी तो आप उस दृश्य को देखिए जहाँ स्वस्फूर्त मोरल पुलिस कैफ़े के अन्दर अधर और ललिथा की पिटायी कर रही है और पिटते हुए दोनों प्रेमी चीख रहे हैं।

फ़्रांस में रहकर पढ़ा-लिखा अधर भारतीय परिवेश में लेश भी कढ़ा हुआ नहीं था, उसे इस मोरल पुलिसिंग का कोई औचित्य समझ में नहीं आया। पिटते समय वह चीख रहा था – "यह हमारा व्यक्तिगत मामला है, कोई हमारे रिश्तों पर पहरा कैसे दे सकता है ? हमने किसी का क्या बिगाड़ा है ? हम अपनी ज़िन्दग़ी कैसे जिएं यह दूसरे लोग तय करने वाले कौन होते हैं"?

ललिथा ने इसे 'ब्राह्मणीय मनुवादी हिन्दू पुलिसिंग' कहते हुए अपना आक्रोश व्यक्त किया जबकि अधर ने इस पुलिसिंग के विरुद्ध रिवोल्यूशन करने की ठान ली।

मारपीट करने वाले युवाओं के मुखिया वी. शेखरन ने अपनी गिरफ़्तारी के समय मुक्तकामप्रदर्शन के अतिउत्साही प्रेमियों को सुनाते हुए कहा – "भारतीय संस्कृति के विरुद्ध आचरण करने के लिए भारत का समाज किसी को नैतिक अनुमति नहीं दे सकता। ऐसी उच्छृंखलता सहन नहीं की जा सकती"।

भीड़ में खड़े अधर और ललिथा के मित्रगण वी. शेखरन पर टूट पड़े – "तुम्हारा पाखण्डी समाज भारत का कानून नहीं है, तुम किसी को अनुमति देने या न देने वाले कौन होते हो ? यदि तुम स्वयं को भारतीय संस्कृति का ठेकेदार मानते हो तो तुम्हारी भारतीय संस्कृति हमारी जीवनशैली की शत्रु है जो

हमारे निजी जीवन के प्रति हिंसा की सीमा तक असहिष्णु है । हम ऐसी संस्कृति को पैरों के नीचे कुचल देंगे"।

आधुनिक भारत की नई पीढ़ी के एक बहुचर्चित शिक्षित वर्ग में कामकेलि का मुक्त प्रदर्शन मौलिक अधिकार के रूप में चिन्हित किया जा चुका था । संस्कृत और हिन्दी के साहित्यकारों ने प्राचीन साहित्य के हवाले से मुक्त काम प्रदर्शन को 'नैतिक' और 'मनुष्य की आवश्यकता' सिद्ध करने का प्रयास किया । भारत की प्राचीन संस्कृति और जीवन मूल्यों के प्रति विद्रोही हुए इन लोगों में प्रख्यात विश्वविद्यालयों के छात्र, शोधछात्र, इंजीनियर्स, साहित्यकार, इतिहासकार, चिंतक और प्रोफ़ेसर्स सम्मिलित थे जो रात्रिकालीन गुह्य आचरण और दिनचर्या के मुक्त आचरण के मध्य किसी प्रकार के विभेद के पक्ष में नहीं थे । वे इस प्रकार के किसी भी विभेद को असमान सामाजिक व्यवस्था का कारण मानते थे ।

बात फैली तो योरोप के मुक्त समाज ने देखा कि इक्कीसवीं शताब्दी की भारतीय युवा पीढ़ी काम-वासना को लेकर दो अतिवादी विपरीत ध्रुवों पर खड़ी हो चुकी है । इण्डियन पैराडॉक्स सात समन्दर पार एक बार फिर चर्चा का विषय बन गया ।

अधर और ललिथा के साथ हुई मार-पीट का विवाद स्थानीय थाने की सरकारी पुलिस तक पहुँचा । सरकारी पुलिस ने पूरा मामला जानने के बाद स्थानीय जनता द्वारा की गई मोरल पुलिसिंग के विरुद्ध सामान्य कार्यवाही तो की किंतु बाद में स्वयं भी रात्रिचर्या वाले आचरण के दिनचर्या में व्यवहृत किए जाने पर आपत्ति की । मुक्त प्रेमालिंगनबद्ध चुम्बन के विरुद्ध अब हिन्दू संगठनों की मोरल पुलिसिंग को सरकारी पुलिस का भी सहयोग मिलने लगा । टकराव बढ़ा तो दोनों पक्षों ने अपनी-अपनी सेनायें जुटाने में देर नहीं की । विद्यालयों से लेकर विश्वविद्यालयों तक वैलेंटाइन डे का उपयोग 'चूमा-चाटी समूह' के सदस्यों की सदस्य संख्या में वृद्धि के लिए किया जाने लगा । केरल में रात्रिचर्या और दिनचर्या के मध्य साम्यवादी अभेद दृष्टि की वकालत की जाने लगी । विज्ञान प्रमाणित सर्काडियन रीद्म के विरुद्ध गॉड्स ऑन कंट्री केरल की शिक्षित युवा पीढ़ी रिवोल्यूशन के लिए तैयार हो चुकी थी । कामज्वर से छटपटाती हुई इक्कीसवीं शताब्दी नैतिक और सामाजिक मर्यादाओं को तोड़ फेकने के लिए उद्यत हो उठी । इस बीच सूरज के उजाले में मुक्त चूमा-चाटी के सार्वजनिक प्रदर्शन के पक्ष में 'फ़्री थिंकर्स' नामक एक बौद्धिक सेना संगठित हो कर प्रकट हुई जिसका उद्देश्य भारत को योरोप की संस्कृति में ढालना था ।

अक्टूबर 2014 में कोज्झिकोडे के एक कैफ़े में प्रेमालिंगनायमान एक युगल को सार्वजनिकरूप से चुम्बन करते हुये देखे जाने पर भारतीय जनता युवा मोर्चा के लोगों द्वारा मारपीट किए जाने की घटना को मलयाली टी.वी. समाचार चैनल 'जय हिन्द' ने अपने चैनल पर प्रदर्शित किया । इस घटना ने केरल ही नहीं बल्कि पूरे देश भर के फ़्री-थिंकर्स को आक्रोशित कर दिया । मुक्त-चिंतकों ने कामक्रीड़ा को रात्रिचर्या की गुह्यता और सामाजिक-नैतिक बन्धन से आज़ाद कराने के लिए एक आन्दोलन प्रारम्भ किया जिसका भारत के युवाओं ने हिप-हिप हुर्रे के साथ स्वागत किया । कुछ अतिउत्साहित 'फ़्री-थिंकर्स' ने अंतरजाल की सोशल साइट "मुख पोथी' (फ़ेसबुक) पर भी 'किस ऑफ़ लव' आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया ।

नौ अक्टूबर 2014 को दिल्ली में 'किस ऑफ़ लव' प्रदर्शन के बाद जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय सहित भारत के अन्य विश्वविद्यालयों में भी इसे एक उत्सव के रूप में मनाये जाने की नई

परम्परा प्रारम्भ की गई। कुछ छात्र-छात्राओं ने प्रोफ़ेसर मटुक नाथ और उनकी शिष्या जूली के प्रेम-आदर्श को स्मरण कर अपने जीवन को धन्य किया।

इंजीनियरिंग के अध्ययन के लिए ग्राम्य वातावरण से शहर के नए वातावरण में आये कृष्णा और शांथा को 'किस ऑफ़ लव आन्दोलन' ने बहुत आकर्षित किया। वे भी प्रेम करने और उसे दिखाने को अपना मौलिक अधिकार मानकर इस आन्दोलन में सबके साथ हो लिए। सार्वजनिक प्रदर्शन के समय जब वे एक-दूसरे के साथ प्रेमालिंगनबद्ध हो पूर्ण तन्मयता के साथ चुम्बनरत थे तो साथ के लोग उनकी कामातुरता के तीव्र आवेग से चिंतित हो उठे। खिलखिलाती मांगलिका ने परिहास करते हुए अपने मित्र शांथनु से कहा – "लगता है कृष्णा-शांथा के लिए बिस्तर की व्यवस्था यहीं करनी होगी"।

नागराजन एक समझदार छात्र नेता के रूप में जाना जाता था। उसने नए खिलाड़ियों की अवश आवेशित कामावेग की नाजुकता को समझ कर दाल-भात में मूसल चन्द बनते हुए कृष्णा को शांथा से अलग किया और कृष्णा को आलिंगनबद्ध कर चुम्बन करने लगा। दोनों मुक्तप्रेमियों की चुभती मूछों ने एक-दूसरे को चुभते हुए अपना विरोध तो किया किंतु इस बीच दोनों के होंठ एक-दूसरे का शोषण करने में लीन हो गए। इस बीच भीड़ में से एक अनजान युवक ने आगे बढ़कर शांथा को थाम लिया और आलिंगनबद्ध हो चुम्बनालीन हो गया। युवक के मुख और नासाद्वार से निरंतर उत्सर्जित होती रहने वाली गुटखे की तीव्र भभक ने शांथा के रोम-रोम में प्रविष्ट हो मानो रोम-रोम का गला घोटना शुरू कर दिया हो। शांथा ज़िबह होती बछिया सी छटपटाने लगी। कृष्णा ने देखा तो उसका रक्तचाप उबाल खाने लगा। उसने नागराजन से स्वयं को मुक्त किया और लपककर अनजान युवक के आलिंगन से शांथा को भी किसी तरह मुक्त करवाया।

कृष्णा और शांथा को लगा कि वे एक जाल में फँस चुके हैं जिससे अब तुरंत निकलना होगा। वे दोनों बदहवास हो वहाँ से निकलना ही चाहते थे कि तभी भीड़ में से निकलकर सामंथा ने शांथा को अपनी बाहों में बुरी तरह जकड़ कर अधरपान करना प्रारम्भ कर दिया। शीघ्र ही शांथा ने अनुभव किया कि यह अधरपान कम अधरकर्तन अधिक था। वह छटपटाई तो विकल कृष्णा ने सामंथा के सुन्दर कपोल पर एक प्रहार किया। नागराजन को फिर सामने आना पड़ा, उसने सामंथा को अपनी ओर खींचकर चूसना शुरू कर दिया। शांथा को मुक्ति मिली किंतु अब तक वह लस्त हो चुकी थी। कृष्णा के सुषुप्त ग्राम्यसंस्कार अचानक भड़भड़ा कर जाग चुके थे, उसे लगा कि आधुनिकता के चक्कर में उसने अपनी शांथा को स्वयं ही दुःशासनों के हाथों में सौंप दिया था। ग्लानि और अपराधबोध से ग्रस्त कृष्णा को उसकी शांथा लुटी-लुटी सी लगने लगी। वह किसी तरह शांथा का हाथ पकड़कर वहाँ से निकल भागने में कामयाब हो गया।

//दो//

समलैंगिकों और कामकुंठितों के लिए फ़्री थिंकर्स का 'किस ऑफ़ लव' आन्दोलन एक सुअवसर के रूप में सामने आया, उन्होंने आन्दोलन को सफल बनाने के लिए एड़ी-चोटी का जोर लगा दिया। सोशल साइट 'मुख पोथी' पर प्रारम्भ किए गए मुक्तकामप्रदर्शन आन्दोलन 'किस ऑफ़ लव' के साथ लाखों लोग जुड़ चुके थे। उत्साहित फ़्री थिंकर्स ने दो नवम्बर 2014 को कोच्चि के मरीन ड्राइव पर प्रेम-प्रदर्शन का

आयोजन किया। युवक-युवतियों के मरीन ड्राइव पर प्रेमालिंगनबद्ध चुम्बन प्रदर्शन को रोकने के लिए कई धार्मिक और राजनैतिक संस्थाओं के लोग एकत्र हुए। मोरल पुलिस की उपस्थिति के कारण केरल की सरकारी पुलिस को भी वहाँ उपस्थित होना पड़ा।

प्रेमालिंगनबद्ध चुम्बन के दीवाने मुक्त-चिंतकों ने दो नवम्बर 2014 को कोचीन के एर्णाकुलम लॉ कॉलेज से एक पदयात्रा प्रारम्भ की जो मरीन ड्राइव पर एक हंगामे और पुलिस द्वारा छात्र-छात्राओं की ग़िरफ़्तारी के साथ समाप्त हुयी। एर्णाकुलम में हल्ला हो गया कि इस पदयात्रा में सम्मिलित लोगों के साथ मोरल पुलिस बनाम शिवसेना, बजरंगदल आदि हिन्दू संगठनों के लोगों ने मारपीट की है।

कोच्चि में दो नवम्बर 2014 को हुयी घटना के बाद एकजुटता दिखाते हुये जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय के छात्र-छात्रायें और कुछ परमादरणीय गुरुजन शाम साढ़े चार बजे गंगा ढाबा पर एकत्र हुए। मोरल पुलिसिंग के विरुद्ध नारे लगाते हुए अपने प्रचण्ड तर्क में एक प्रोफ़ेसर साहब ने घोषणा की – "...प्रेमालिंगन और चुम्बन वैदिक परम्परा है और खजुराहो के मन्दिरों में भी उत्खचित है इसलिए यह उनका मौलिक अधिकार है जिसे किसी भी स्थिति में प्रतिबन्धित नहीं किया जा सकता"। गुरु जी की इस मौलिक घोषणा के पश्चात् गंगा ढाबा एक तीर्थ स्थल की तरह पवित्र हो गया।

दिल्ली के जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में मुक्त-चिंतकों ने 'प्रेमलसित चुम्बन' का सार्वजनिक प्रदर्शन किया जिससे उत्साहित हो कर कोच्चि में भी प्रेम के मुक्त प्रदर्शन को मौलिक अधिकार मानते हुए आन्दोलन किया गया। फिर तो जैसे 'प्रेमलसित चुम्बनान्दोलनम्' की भारत भर में बाढ़ सी आ गई। हिन्दू संगठनों की मोरल पुलिसिंग के विरुद्ध पाँच नवम्बर 2014 को जादवपुर विवि कोलकाता के छात्रों ने 'किस ऑफ़ लव' का सार्वजनिक प्रदर्शन किया। इस प्रदर्शन की तीव्रता का एक तात्कालिक लाभ तो अम्बर और नित्या चटर्जी को उसी दिन प्राप्त हो गया।

जो नित्या विवाह की देहरी के बहाने अभी तक अम्बर को अपने होठों के पास नहीं फ़टकने देती थी, वही अब सार्वजनिकरूप से अम्बर को अधरपान के लिए मना नहीं कर सकी। 'गंवारू लड़की' के ठप्पे से बचने के लिए ऐसा करना अत्यावश्यक था। अधरपान के सार्वजनिक प्रदर्शन के तत्काल पश्चात् नित्या एक 'आदर्श शहरी लड़की' बन जाने के आत्मविश्वास से भर गई। इन गौरवपूर्ण क्षणों में उसके छलकते हुए आत्मविश्वास को उसके छोटे भाई नीलांजन ने भी अनुभव किया। उसे अपनी बहन से ईर्ष्या हुई, काश ! आज उसके बन्द भाग्य को भी खोलने वाली कोई मिल गई होती।

उस दिन नीलांजन को अकेले ही घर जाना पड़ा। नित्या उसके साथ नहीं गई जिससे नीलांजन को बहुत बुरा लग रहा था किंतु गँवारूपन और पिछड़ेपन से मुक्त होने के लिए आधुनिक सभ्यता की यह एक अनिवार्य शर्त थी जिसे पूरा करने के लिए अपनी कुँवारी दीदी को उसके मित्र के साथ रात्रिचर्या के लिए जाती हुई देखना और मन मसोस कर रह जाना आवश्यक था।

उस रात अम्बर और नित्या ने यौनसुख की वर्जनाओं को तोड़-मरोड़ कर नाली में फेंक दिया था। अब वे दकियानूस भारतीय मनुवाद एवं ब्राह्मणीय फासीवाद से मुक्त हो स्वयं को पूरी तरह किसी योरोपीय साम्यवादी प्रेमीयुगल की तरह अनुभव करने लगे थे। उनका जीवन धन्य हो चुका था जबकि नीलांजन का जीवन धन्य होना अभी शेष था।

पाँच नवम्बर 2014 रविवार शाम साढ़े पाँच बजे आई.आई. टी. मुम्बई के छात्र-छात्राओं एवं उनके प्राध्यापकों ने 'किसिंग डे' का आह्वान किया । इस अवसर पर इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग की डॉक्टरल अध्येता उदीप्ता चटर्जी ने अपने प्रवचन में कहा – "आधुनिक दुनिया में प्रेम और उसके प्रदर्शन के अधिकार पर नैतिक प्रतिबन्ध को स्वीकार नहीं किया जा सकता । सार्वजनिक स्थलों पर प्रेम-प्रदर्शन भारत में अपराध नहीं माना जाता"।

एक दिन प्रगतिशील मुम्बई की 'लेस्बियन, गे, बाईसेक्सुअल, ट्रांसजेण्डर एवं क्वीर कम्युनिटी' के लिए काम करने वाली "साथी" नामक संस्था के सहयोग से इंजीनियरिंग कॉलेज के 'प्रोग्रेसिव एण्ड डेमोक्रेटिक स्टूडेंट्स' ने 'किसिंग डे' नामक आनन्दोत्सव के प्रदर्शन का आयोजन किया । उच्चशिक्षा उपाधिधारी छात्र राहुल मगंती से एक पत्रकार ने पूछा –"यौनोत्सर्जित प्रेम तो नितांत व्यक्तिगत आचरण है, इसके सार्वजनिक प्रदर्शन की आवश्यकता क्यों है"?

राहुल मगंती ने लाल सलाम वाले अंदाज़ में उत्तर दिया – "किसी युगल को पार्क या किसी सार्वजनिक स्थान में प्रेम करने से रोकना 'लव एण्ड सेक्सुअलिटी' के अधिकार के विरुद्ध है । यह एक तरह का "मोरल फ़ासिज़्म" है जिसके विरोध के लिए 'हग एण्ड किस' का सार्वजनिक प्रदर्शन किया जाना आवश्यक है"।

आन्दोलन अपने उफान पर था... साथ ही मुक्तयौनाकांक्षी भी आर-पार की लड़ाई के मूड में आ गए । एर्णाकुलम महाराजा कॉलेज में सात नवम्बर 2014 को "हग ऑफ़ लव" आन्दोलन किया गया जिस पर कार्यवाही करते हुए कॉलेज प्रशासन ने दस आन्दोलनकारी विद्यार्थियों को दस दिन के लिए शैक्षणिक सत्र से वंचित कर दिया । इससे उत्तेजित होकर सात दिसम्बर 2014 को कोज्झिकोडे बस स्टैण्ड पर युवक-युवतियों द्वारा 'किस इन द स्ट्रीट्स' का प्रदर्शन किया गया । बस स्टैण्ड पर अपरान्ह दो बजकर पैंतालीस मिनट पर लगभग दस लोगों का पहला जत्था सामने आया जिसमें तीन लड़कियाँ थीं, उसके बाद युवक-युवतियाँ छोटे-छोटे समूहों में सड़क पर आते गये, उन्होंने प्रदर्शन किए और नुक्कड़ नाटक भी । शिवसेना, हनुमान सेना और बजरंगदल के लोगों ने उन्हें रोकना चाहा परिणामतः पुलिस ने दोनों पक्षों के लोगों को ग़िरफ़्तार किया । ग़िरफ़्तार क्रांतिकारियों ने पुलिस वैन में ले जाए जाते समय भी चुम्बनालीन हो प्रदर्शन किया और फिर हवालात में भी लिपलॉक करते रहे जिससे पुलिस के सामने एक ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई जो अप्रिय तो थी किंतु उससे मुक्ति का उनके पास कोई उपाय नहीं था ।

यह एक ऐसा आन्दोलन था जो छात्र-छात्राओं एवं राजनैतिक-धार्मिक संस्थाओं के बीच उच्छृंखल प्रेमाभिव्यक्ति एवं नैतिक मर्यादाओं के मध्य छेड़ा गया था । आधुनिक शिक्षित युवा पीढ़ी नैतिक सिद्धांतों को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थी । उच्छृंखल प्रेम प्रदर्शन को रोकने के लिए किए जाने वाले प्रयासों में नैतिक शुचिता और सौम्यता का अभाव स्पष्ट दिखायी दे रहा था । दोनों ही पक्ष आक्रोशित थे, उनके आचरण में विवेक और संयम का अभाव देखा जा सकता था । वे प्रदर्शनकारियों जैसे मुक्त आचरण के लिए उनसे अपनी-अपनी बहनें अपने विरोधियों के हवाले कर देने के लिए कहने लगे । विरोध प्रदर्शन के प्रतिविरोधी पक्ष से जब आक्रोश में 'सेंड योर सिस्टर्स टु किस अस' के नारे लगाए जाने लगे तो उनके अपने

ही नैतिक सिद्धांत छिन्न-भिन्न हो गए। फ़्री थिंकर्स को प्रत्याक्रमण का अवसर मिला और उन्होंने पूछना शुरू किया कि क्या बहनें अपने भाइयों की सम्पत्ति होती हैं जिन्हें किसी को भी स्तेमाल के लिए सौंप दिया जाना चाहिए ?

एक राजनेता ने वक्तव्य दिया – "प्रेम-प्रदर्शन को कुचलने के पीछे राजनीतिक उद्देश्य छिपे हैं। ये लोग भारत को षड्यंत्रपूर्वक एक हिन्दू राष्ट्र बनाना चाहते हैं। उन्होंने हिन्दू धर्म को ही राष्ट्रीयता घोषित कर दिया है। किस ऑफ़ लव प्रदर्शन के दौरान ऐसे ही विरोधियों द्वारा अमर्यादित आचरण किया जा रहा है। वे प्रदर्शनकारी लड़कियों को स्लट्स मानते हैं और पुरुष प्रदर्शनकारियों को अपनी बहनों को उनके पास भेजने के लिए कहते हैं"।

फ़्री थिंकर्स के मुक्त-चिंतन के समर्थन एवं मोरल पुलिसिंग के विरोध में हैदराबाद विश्वविद्यालय, दिल्ली के जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, पांडिचेरी विश्वविद्यालय, जादवपुर विश्वविद्यालय और प्रेसीडेंसी विश्वविद्यालय कोलकाता के साथ-साथ इण्डियन इंस्टीच्यूट ऑफ़ साइंस-एजूकेशन एण्ड रिसर्च कोलकाता, आई.आई.टी. मद्रास एवं मुम्बई ने भी पाँच नवम्बर 2014 को विरोध प्रदर्शन किया। 2014 में छेड़े गए 'किस ऑफ़ लव' को पहले तो आन्दोलन और फिर बाद में उत्सव के रूप में मोरल पुलिसिंग के विरुद्ध सामाजिक युद्ध के एक प्रतीक रूप में पूरे भारत में अपनाया गया।

आठ नवम्बर 2014 को दिल्ली में जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय के छात्र-छात्राओं की अगुआई में दिल्ली विश्वविद्यालय, जामिया मिलिया इस्लामिया विश्वविद्यालय, अम्बेडकर विश्वविद्यालय दिल्ली एवं राष्ट्रीय विधि विश्वविद्यालय के छात्र-छात्राओं द्वारा झण्डेवालान स्थित राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ कार्यालय के सामने आलिंगन-चुम्बन के साथ 'रिवोल्यूशन फ़ॉर राइट ऑफ़ किसिंग एण्ड हगिंग' का प्रदर्शन किया। हिन्दू सेना के सदस्यों ने इस मुक्त-काम-प्रदर्शन का विरोध किया जो तुरंत हिंसा में बदल गया। भारत के गँवार लोगों के प्राचीन जीवनमूल्यों के संरक्षक ठेकेदार प्रेम को 'करने' तक सीमित रखने के लिए हिंसा पर उतारू थे जबकि आधुनिक भारत के सभ्य युवा प्रेम करने को 'प्रदर्शन' की सीमा तक ले जाने के लिए सड़क पर कामक्रीड़ाओं का स्थान-स्थान पर आयोजन करने के लिए कटिबद्ध हो चुके थे।

कोज्झिकोडे के लॉ कॉलेज के छात्रों द्वारा दस दिसम्बर 2014 को 'हग ऑफ़ लव' और थिरुवनंतपुरम में तेरह दिसम्बर 2014 को 'किस ऑफ़ लव' अगेंस्ट मोरल फ़ासिज़्म जैसे प्रतिक्रियात्मक आन्दोलन किए गए।

भारत के फ़्री थिंकर्स 'किस ऑफ़ लव' के बाद 'हग ऑफ़ लव' से होते हुए 'किस इन द स्ट्रीट्स' तक पहुँच गए। इस बीच दिल्ली उच्चन्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय ने भी रात्रिकालीन वैयक्तिक आचरण के सार्वजनिक प्रदर्शन को आपराधिक कृत्य स्वीकार करने से इंकार कर दिया जिससे फ़्री थिंकर्स सम्प्रदाय में हर्ष एवं उत्साह की लहर दौड़ गई। जिस दिन यह ऑर्डर पास हुआ उस दिन हिन्दी की प्रोफ़ेसर राधा खोब्रागढ़े अपनी लिस्बियन मित्र वृंदा बनर्जी के साथ खजुराहो प्रवास पर थीं। ख़बर मिलने के बाद वे दोनों ख़ुशी से झूम उठीं, उन्होंने चियर्स किया और फिर कमरे का दरवाज़ा बन्द करके सिक्स्टी नाइन हो गईं।

सॉफ़्ट वेयर इंजीनियर राहुल पाशुपलन एवं उनकी पत्नी रश्मि नायर ने 2015 में 'किस ऑफ़ लव' आन्दोलन को और आगे बढ़ाया। वे सार्वजनिक स्थलों पर प्रेम प्रदर्शन को अपना मौलिक अधिकार और इस पर लगाए जाने वाले प्रतिबन्ध को 'मोरल फ़ासिज़्म' मानते थे।

एक दिन केरल के लोगों को स्थानीय समाचार पत्रों से ज्ञात हुआ कि एक सेक्स रैकेट संचालित करने वाले जिन दो लोगों को पुलिस ने गिरफ़्तार किया है वे कोई और नहीं बल्कि 'किस ऑफ़ लव' के आयोजक राहुल पाशुपलन और रश्मि नायर ही हैं। इस प्रेम दिवाने युगल को पन्द्रह माह तक जेल में रहना पड़ा। बाद में राहुल एक फ़िल्म निर्माता बन गए।

अपसंस्कृति को संस्कृति स्वीकार कर चुके लोग अपने पक्ष में कुतर्कों को आकर्षक शब्दों से अलंकृत कर भारी भरकम और बौद्धिक से प्रतीत होने वाले बनाने में दक्ष थे। कार्ल मार्क्स और शॉपेनहॉर के सम्प्रदायविहीन दर्शन से अनुप्राणित भारत के शिक्षित लोगों के एक वर्ग की मुक्तविचारधारा अब तक एक सुस्थापित सम्प्रदाय का रूप धारण कर चुकी थी। मुक्तयौन संबन्धों और वैश्यावृत्ति के बीच केवल मुद्रा विनिमय को ही विभाजक और नैतिक रेखा स्वीकार कर लिया गया। भारत का एक बड़ा वर्ग इस परिवर्तन में भारत को आधुनिक होता हुआ देखने लगा।

आत्महत्या करने वाले किसानों की विधवाओं ने देखा, दालमण्डी के पल्लेदारों ने देखा, रीगल टॉकीज के सामने खड़े बीड़ी फूँकने वाले मज़दूरों ने देखा, महानगरीय सड़कों के किनारे कचरा बीनने वाले बच्चों ने देखा... पूरे भारत ने देखा कि प्रेमपूर्ण काममुद्राओं एवं क्रियाओं के मुक्त प्रदर्शन को लेकर भारत के प्रगतिशीलों में वैचारिक अतिसार का आउट ब्रेक हो चुका है।

बंगाल की इतिहासकार चारु गुप्ता संस्कृति को गतिशील मानती हैं, उनके अनुसार – "संस्कृति कोई स्थायी तत्व नहीं है, यह समाज की आर्थिक और सामाजिक जीवनशैली के अनुरूप निरंतर परिवर्तित होती रहती है"।

गाँव के पढ़े-लिखे किंतु पुरानी विचारधारा में विश्वास रखने वाले गँवारू प्रोफ़ेसर गौरीशंकर त्रिपाठी को सभ्य इतिहासकार चारु गुप्ता के विचार समझ में नहीं आ सके। उन्होंने अपने से दो साल बड़े सेवानिवृत्त प्रोफ़ेसर शंभूनाथ मिश्र से पूछा – "का हो मिसिर जी ! ई चारु गुप्ता का कह रही हैं ? संस्कृति के अनुरूप जीवनशैली होती है कि जीवनशैली के अनुरूप संस्कृति होती है"?

मिश्र जी ने नेत्र बन्द किए, कुछ क्षण समाधिस्थ से हुए फिर धीरे-धीरे बोले – "संस्कृति हमारे विचारों और आचरण का वह परिमार्जित स्वरूप है जो अपने मूल्यों के कारण प्रशंसित और अनुकरणीय है। संस्कृति निरंतर ऊर्ध्वगामी होती है, इस दृष्टि से यह स्थायी तत्व नहीं है किंतु यदि जीवनमूल्यों में क्षरण होता है तो उसे संस्कृति नहीं अपसंस्कृति कहा जायेगा। आर्थिक और सामाजिक जीवनशैली जब संस्कृति को प्रभावित करने लगे तो फिर वह संस्कृति नहीं रह जाती बल्कि अपसंस्कृति हो जाती है। संस्कृति से जीवनशैली नियंत्रित होती है, जीवनशैली से संस्कृति के नियंत्रण और परिमार्जन का प्रश्न ही नहीं उठता"।

दोनों वृद्ध विप्रों को आधुनिक भारत के युवाओं की अधोगामी चिंतन दिशा से दुःख हुआ। वे दोनों गहन सोच में डूब गए।

विश्वविद्यालय में ज्ञान के सबूत की उपाधियाँ बाँटी जा चुकी थीं। छात्र-छात्राओं की ज़िन्दग़ी का एक ख़ूबसूरत अध्याय बन्द हुआ तो दुनिया की विपन्नता और रोटी के संघर्ष का एक नया अध्याय खुल गया। आदर्श आइना दिखाने लगे और ज्ञान के सबूत बेकार के कागज साबित होने लगे।

इस बीच अम्बर को सैन फ़्रांसिस्को में नौकरी मिल गई, नित्या के प्रति उसके आकर्षण का ज्वार उतर चुका था। वहाँ जाकर उसने एक कनाडियन व्यापारी की अमीर बेटी से विवाह कर लिया।

अम्बर के सैन फ़्रांसिस्को जाने के एक महीने बाद ही कुमारी परित्यक्ता नित्या चटर्जी ने एक ख़ूबसूरत बच्ची को जन्म दिया। आँखों से गंगा-जमुना बहाती नित्या ने बच्ची का नाम रखा – "संस्कृति"।

***

२७. प्रलाप

आज शिक्षक दिवस है यानी कल बीते हुए चार सितम्बर का दिन शिक्षकों का दिन नहीं था। तब क्या कल आने वाले छह सितम्बर को भी हमारा दिन नहीं होगा? अर्थात् हमारे लिए पूरे शिक्षा-सत्र में मात्र एक दिन !

विश्वविख्यात विश्वगुरु भारत में पाँच सितम्बर के इस एक विशेष दिन को अंततः मुझे भी 'गुरुजनों के लिए आरक्षित दिन' के रूप में स्वीकार करना ही पड़ा।

आज इस पवित्र दिन के अवसर पर मैंने अपने अन्दर एक परिवर्तन करने का निर्णय किया है। यहाँ यह शंका करने की कोई आवश्यकता नहीं कि सेवा-निवृत्ति के बाद मुझे शिक्षक दिवस से क्या लेना-देना?

देखिए ! मरने के बाद भी मैं तो शिक्षक के रूप में तब तक जाना जाता रहूँगा जब तक लोगों की स्मृतियों से भी मर नहीं जाता। इसीलिए सेवानिवृत्त शिक्षक होते हुए भी मैंने अपने मन को समझा-बुझा कर अब और प्रलाप न करने के लिए तैयार कर लिया है। मैं सठियाया नहीं हूँ, बस मैंने आप लोगों के सत्य को स्वीकार भर कर लिया है। यह भी उतना ही सच है जितना कि यह कि मैंने उस सत्य को स्वीकार कर लिया है जो कभी मेरा सत्य नहीं बन सका... और इसीलिए मेरे इस नए सत्य पर आपको विश्वास करना ही होगा। जीवन के कई दशक प्रलाप करने में व्यर्थ करने के पश्चात् अंततः मैंने आप सबके मार्ग को ही प्रशस्त मार्ग स्वीकार कर लिया है। अस्तु, यह आपके लिए हर्ष का विषय होना चाहिए।

मेरे अन्दर हुए इस परिवर्तन के लिए मैं अपनी छोटी बहू का शुक्रगुजार हूँ, आपको भी होना चाहिए, आख़िर यह भारतीय लोकतंत्र के व्यवहारवाद की विजय है। इस विजयगाथा से पूर्व यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि सेवानिवृत्त होने के बाद दीर्घकाल तक मेरी भूमिका एक मूकदर्शक की ही रही है। आज से यह भूमिका समाप्त हुई। आज पृथिवी और आकाश को साक्षी मान मैं यह निर्लज्ज घोषणा करता हूँ कि अब आगे का मेरा सम्पूर्ण जीवन अपात्रों एवं कुपात्रों को राष्ट्रपति पुरस्कार दिलाने के लिए कूट प्रमाणपत्रों की रचना-प्रक्रिया में समर्पित होने वाला है।

अभी तक मैं जिस आदर्श की बात किया करता था वह किसी प्रलाप (कुलकर्णी के शब्दों में – 'विधवाप्रलाप') से कम था क्या? स्वामी रामकृष्ण परमहंस जी कहा करते थे कि सम्मान और पुरस्कार व्यक्ति को अहंकारी बना सकते हैं। जाने दीजिए... अब वह समय भी तो नहीं रहा, स्वामी जी के भक्तों ने उनके विचारों को ख़ारिज कर दिया है। शेर की खाल ओढ़कर बहादुरी का पुरस्कार झटक लेने का यह खेल भी कम मज़ेदार नहीं है। कई लोग निपुण हो चुके हैं इस खेल में। अपने उत्तरदायित्वों के प्रति सजग और समर्पित रहे भगवती चरण वाजपेयी अपने शैक्षणिक जीवन में कभी किसी पुरस्कार के लिए उपयुक्त नहीं पाए गए। एक आत्मप्रेरित शिक्षक को कोई पुरस्कार भला क्या प्रेरित करेगा! उपाध्याय जी अक्सर कहा करते – "पुरस्कार के सम्मान की अपेक्षा तो उसे है जो अपने छात्रों का प्रिय नहीं बन सका, सम्मान का पात्र नहीं बन सका, जो किसी शिक्षण संस्थान और समाज दोनों ही जगह अपनी पात्रता स्थापित और प्रमाणित नहीं कर सका"।

एक बार कुलकर्णी ने जब उपाध्याय जी का मन टटोलने के लिए पुरस्कार की चाहत के लिए पूछा तो उन्होंने कहा था – "सम्मान पाने के लिए आवेदन करने और अपनी योग्यताओं-क्षमताओं के प्रमाण सरकार को देने की परम्परा मुझे कभी सम्मानजनक नहीं लगी। अरे! वह सम्मान ही क्या जिसके लिए आवेदन करना पड़े और सबूत जुटाने पड़ें"!

राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित कुलकर्णी तो किसी अवसर विशेष पर ही संस्थान में देखे जाते थे। वे कहा करते – "गधों की तरह मास्टरी करना तो खन्ना जैसे पागलों को ही शोभा देता है"।

कभी-कभी वे मेरी पीठ पर धौल जमाते हुए उपहास करते – "ओए खन्ने ! तू तो बिल्कुल ठीक-ठाक दिख रहा है यार, पागल नहीं हुआ अभी तक"!

उपहास के बाद कुलकर्णी को मुझे पर दया आ जाती और वे एक मुस्कान के साथ उपसंहार करते – "बेचारा... आदर्श शिक्षक है, बहुत पुण्य कमाया है, स्वर्ग का आरक्षण तो इसी के लिए है, ऊपर वाला इससे ख़ूब ख़ुश रहता होगा। चलो कोई बात नहीं, अपन तो नरक में ही रहने के आदी हो चुके हैं। वहाँ भी कट ही जाएगी"।

कुलकर्णी को जब राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित किया गया तो सभी आश्चर्यचकित थे। कुछ लोगों ने स्वयं को ठगा हुआ सा भी पाया। फिर जब छह साल बाद मिश्र जी का भी बुलावा आया दिल्ली से तो एक बार फिर हर कोई आश्चर्यचकित हो गया। तब मैं सोचा करता कि यह राष्ट्रपति पुरस्कार आख़िर किसी को मिलता कैसे है ?

मिलता किसे है – यह तो इतने दिनों में अच्छी तरह से जान गया था किंतु यह सब होता कैसे है – यह नहीं जान सका। नितांत मक्कार और कुपात्र व्यक्ति का अनायास ही किसी राष्ट्रीय स्तर के सम्मान का अधिकारी बन जाना मेरे लिए किसी रहस्य से कम न था। वंद्योपाध्याय जी कहते – "खन्ना जी! यह एक ऐसी भूलभुलैय्या है जिसमें घुसे बिना ही लोग बाहर निकल आते हैं किंतु आप नहीं समझ सकेंगे यह सब। इसका एक जुगाड़ शास्त्र होता है जो आपके बस का नहीं"।

मुझे कुछ समझ में नहीं आता, न वंद्योपाध्याय जी की बात और न कुलकर्णी और मिश्र जी के राष्ट्रपति पुरस्कार का रहस्य।

फिर एक दिन मेरी छोटी बहू ने आँखें खोल दीं मेरी। दोपहर का समय था, डाकिया कोई डाक थमा कर गया था। कुलविन्दर उसी को लेकर मेरे पास आई थी – "इसका हिन्दी में अनुवाद कर दीजिए, अंग्रेज़ी में लिखा है"।

पत्र पढ़कर मैं सन्न रह गया, मेरे नालायक पुत्र को शिक्षक दिवस पर सम्मानित करने के लिए दिल्ली से बुलावा आया था, ऐसे शिक्षक को सम्मानित करने के लिए आमंत्रित किया गया था जो विद्यालय

जाए बिना ही वेतन लेते रहने में स्वयं को गौरवान्वित अनुभव किया करता था। अध्यापन उसके लिए एक निकृष्ट कार्य था। देश के गुणी लोगों द्वारा उसे ही योग्य शिक्षक मान कर सम्मानित करने का निर्णय लिया गया था। सरकार ने एक ऐसे व्यक्ति को सम्मानित करने का निर्णय लिया था जो ढँग से एक आवेदन तक नहीं लिख सकता था।

मेरे लिए दुःख का विषय यह नहीं था कि फिर किसी कुपात्र को राष्ट्रपति पुरस्कार के लिए चुन लिया गया बल्कि यह था कि योग्यता का अवमूल्यन यदि इसी तरह होता रहा तो कहीं योग्यता के मापदण्डों का भी वास्तविक पतन न हो जाय!

विषाद् के क्षणों में ऐसा सोचना स्वाभाविक है पर विश्वास था कि ऐसा होगा नहीं। जंग लग जाने पर मापदण्ड बदल सकते हैं पर योग्यता का मूल्य कभी नहीं बदलेगा। और फिर, क्या हम ऐसे पुरस्कारों को सम्मान की दृष्टि से देख सकेंगे कभी जो जंग लगे पैमानों से माप कर दिए गए हों ? मुझे तो ऐसे पुरस्कारों का कोई औचित्य ही कभी समझ में नहीं आ सका।

मैं दुःखी था, सरस्वती का घोर अपमान! संस्कृत में एम.ए. की डिग्रीधारिणी छोटी बहू को मेरे चेहरे के भाव पढ़ने में तनिक भी देर नहीं लगी। कहने लगी – "आपको ख़ुश होना चाहिए, इतने योग्य और कर्त्तव्यपरायण होने के बाद भी जो सम्मान आपको नहीं मिल सका उसे आपका बेटा प्राप्त करने में सफल हुआ है"।

मैंने पूछा – "ऐसे पुरस्कार का क्या अर्थ भला"!

बहू बोली – "यदि सरल मार्ग से लक्ष्य पा सकना सम्भव हो तो दुरूह मार्ग का चयन करना आवश्यक है क्या? किया तो था आपने, क्या मिला? न सम्मान का सुख, न परिवार का सुख"।

"न सम्मान, न परिवार....." कुलविन्दर एक निर्मम चोट करके फिर नहीं रुकी, भीतर चली गई। मैं बंतो के बारे में सोचने लगा। अक्सर ताने मारती रहती थी – "आपके पास तो मेरे लिए सोचने का भी समय नहीं है। आप... आपकी किताबें और आपका कॉलेज, बस... इसके बाद दुनिया ख़त्म। लेकिन मेरी दुनिया कहाँ से शुरू होती है यह आप आज तक नहीं जान सके, आगे भी नहीं जान सकेंगे कभी"।

उसे मेरी किताबों से बड़ी चिढ़ थी। मैं जब भी कोई नई किताब ख़रीद कर लाता वह तुरंत कहती – "ले आए मेरी एक और सौत"!

बंतो अब इस दुनिया में नहीं है। उसने अपना लगभग सारा जीवन मायके में ही बिता दिया। शुक्र है कि अपने अंतिम समय में वह मेरे ही पास थी।

नई पीढ़ी के अपने मूल्य हैं, व्यवहारवादी मूल्य। इनके लिए ऐसे आदर्शों का कोई मूल्य नहीं जो व्यक्ति को उपलब्धियों से कोसों दूर रखते हों।

फिर एक दिन मुझे सब कुछ पता चल गया। पता चला कि जिस तरह पीएच. डी. के लिए शोधपत्र तैयार करने वाले किराये पर सहज ही उपलब्ध हो जाते हैं उसी तरह अन्य सम्मानों के लिए भी आवश्यक प्रमाणपत्र और सामग्री तैयार करने के लिए किराये पर सहज ही उपलब्ध हो जाने वाले कुशल मज़दूरों की कमी नहीं है भारत में।

कुलविन्दर से चोट खाने के बाद मैंने भी अपने आपको ऐसे ही किसी मज़दूर के स्थान पर रख कर देखने की कल्पना की। मुझे मेरी कल्पना में यह खेल अच्छा लगा। जीवन के उत्तरार्ध में बौद्धिक मनोरंजन का एक अच्छा सा साधन मेरे हाथ लग गया। कुलविन्दर पढ़ी लिखी है, योग्यता में मेरे बुद्धू बेटे गुरुवचन से उसकी तुलना करने की बात भी नहीं सोची जा सकती। अपने पति को राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित करवाने के लिए सारी जुगाड़ उसी ने की थी। महीनों पहले से उपलब्धियों के कूट-प्रमाणों की रचना के पीछे उसी की व्यावहारिक बुद्धि का कमाल था। उसके व्यवहारवाद में किसी भी कार्य के लिए आर्थिक लेन-देन एक सामान्य प्रक्रिया थी जिसका उन्मुक्त प्रयोग उसने इस सम्मान को झटकने में भी किया था।

और हाँ! इस सम्मान का गुरुतर बोझ उठाए घूम पाना भी कोई हँसी-खेल नहीं है। पहले कुलकर्णी फिर मिश्र और अब गुरुवचन... ऐसे ही न जाने और भी कितने लोग इस सम्मान के बोझ को उठाये आत्ममुग्ध हो घूम रहे होंगे। मैं सचमुच इनके दुःसाहस, धृष्टता, निर्लज्जता और व्यवहारवाद का कायल हो गया हूँ।

इतना सब जानने के बाद भी राष्ट्रपति पुरस्कार के सम्मान के प्रति मोह बनाए रखना मेरे जैसे लोगों के बस का तो नहीं। जीवन के उत्तरार्ध में मूल्यहीन पुरस्कार के व्यापार का एक हिस्सा बन कर स्वयं को व्यस्त रखने का यह एक अच्छा उपाय है। तो मैं अमित खन्ना, भौतिक शास्त्र का सेवानिवृत्त प्राध्यापक पुरस्कारों की आँख-मिचौली के खेल में आँख-मिचौली के पुरस्कार के लिए जुगाड़ लगाने की मज़दूरी करने को तैयार हो गया हूँ।

***

२८. फिर एक घटिया कहानी....

दर-असल हुआ यूँ कि प्रोड्यूसर राघवन ने कहानी पढ़ने के बाद मुस्कराते हुये कह दिया – "ऐसी घटिया कहानी पर फ़िल्म बनाने के लिए कौन फ़ायनेंसर पैसा लगायेगा मिसिर जी ! कुछ तो मसाला होना चाहिये न!"

बात सुनकर मिसिर जी की आँखों में एक चमक सी आयी और उन्होंने अपनी कहानी का शीर्षक ही रख दिया "घटिया कहानी"। कहानी कुछ इस तरह थी –

कुछ बरस पहले जब साहित्यकारों द्वारा पुरस्कार वापसी अभियान शुरू हुआ तो इसे राष्ट्रविरोधी कृत्य करार देने वालों में होड़ लग गयी थी। पुरस्कार वापस करने वालों में से कुछ लोगों ने जब यह कहा कि – "यह देश अब रहने लायक नहीं रहा" तो राष्ट्रवादियों ने उन्हें पाकिस्तान चले जाने का सलाह दे डाली थी। डॉ. दागी को पुरस्कार वापसी अभियान अच्छा नहीं लगा और वे भी राष्ट्रवादियों की भीड़ में शामिल हो गये थे। वही डॉक्टर दागी अब मुक्त कण्ठ से यह स्वीकार करने लगे कि वास्तव में यह देश अब रहने लायक नहीं रहा। मिसिर जी मानते हैं कि डॉ. दागी का दर्द वाज़िब है और उनका आक्रोश भी। पेश है दागी की कहानी, झुमरी तलैया वाले मिसिर जी की कलम से...

नौ माह की मानसिक यंत्रणाओं से जूझने के बाद एक संवेदनशील उच्च अधिकारी की बदौलत एक दिन सरकार का हुक्म हुआ और अनिवार्य सेवानिवृत्ति के अपमानजनक दंश से डॉक्टर दागी को मुक्त कर दिया गया। यह उन स्वेच्छाचारी अधिकारियों की प्रशासनिक और नैतिक पराजय थी जिन्होंने अपने झूठे अहंकार की संतुष्टि के लिये एक निष्ठावान डॉक्टर की सामाजिक हत्या का सफल प्रयास किया था।

अधिकारियों को सरकार का यह हुक्म पसन्द नहीं आया, वे बौखला उठे और तय कर लिया कि दागी को बहाली के बाद भी अपमानित और प्रताड़ित किये जाने का सिलसिला समाप्त नहीं होने देंगे। उन्होंने दागी की पोस्टिंग एक प्रशासनिक कार्यालय में कर दी जहाँ डॉक़्टर का न तो कोई पद था और न उनके बैठने का स्थान। वे रोज कार्यालय आते और इधर-उधर भटकते रहते।

ब्रह्माण्ड में डार्क मैटर की बहुलता के बाद भी वह रौशनी की चन्द किरणों को पूरी तरह समाप्त नहीं कर पाता। प्रकृति का यही नियम है। रौशनी की उन्हीं चन्द किरणों ने डार्क मैटर को घूर कर देखा तो डॉक्टर दागी को प्रशासनिक कार्यालय से हटाकर एक हॉस्पिटल में भेज दिया गया इस सख़्त निर्देश के साथ कि इस "दुश्मन" से कोई काम न लिया जाय और न उसके बैठने की कोई व्यवस्था की जाय। हॉस्पिटल डॉक्टर दागी के लिये एक खुली जेल बन गया।

प्रशासनिक कार्यालय से हॉस्पिटल अटैच होने के बाद डॉक्टर दागी ख़ुश हो गये । किंतु उनकी यह ख़ुशी उसी क्षण काफ़ूर हो गयी जब हॉस्पिटल पहुँचने पर उन्हें बताया गया कि उनका नया काम है उपस्थिति पञ्जी में सिर्फ़ अपनी हाज़िरी लगाना । उन्हें आश्चर्य हुआ – यह कैसा काम! सुबह आठ बजे से दोपहर बाद दो बजे तक बिना किसी काम के अस्पताल में इधर से उधर डोलते रहना किसी सजा से कम नहीं होता । एक ओर प्रदेश के हॉस्पिटल्स में डॉक्टर्स की कमी, दूसरी ओर एक निष्ठावान डॉक्टर के लिये कोई काम ही नहीं । धर्मपरायण भारत के ऐसे ही पैराडॉक्सेस विदेशियों को अचम्भित करते रहे हैं ।

डॉक्टर दागी पहले तो सबकी प्रश्नवाचक निगाहों के लिये कौतूहल बने रहे फिर ज़ल्दी ही "सजायाफ्ता डॉक्टर" के रूप में चर्चित हो गये । कौतूहल भरी निगाहों के स्थान पर अब उन्हें हॉस्पिटल स्टाफ़ की मुस्कराती हुयी व्यंग्य निगाहों का सामना करना पड़ता और वे इन स्थितियों से निपटने के लिये बेशर्म बनने का नाटक किया करते ।

एक दिन डॉ. दागी पास के एक महाविद्यालय में चले गये और हेल्थ-अवेयरनेस के लिये "लाइफ़ स्टाइल जनरेटेड डिस-ऑर्डर्स एण्ड व्हाइट रिवोल्यूशन" विषय पर एक लेक्चर दे डाला । ख़बर फैलते देर नहीं लगी और डॉ. दागी एक ढीठ और आदतन अपराधी के रूप में शीघ्र ही कुख्यात हो गये । अन्य डॉक्टर्स उन्हें समझाइश देते – "क्या ज़रूरत थी यह सब करने की? चुपचाप नौकरी नहीं कर सकते?"

डॉ. दागी पूछते – "बिना काम की नौकरी ? क्या इस देश में कोई इन्नोवेटिव कार्य करना अपराध है ?"

फिर एक दिन हॉस्पिटल सुपरिंटेण्डेण्ट के ऑफ़िस में डॉ. दागी की पेशी हुयी । वहाँ कुछ विद्वान प्रोफ़ेसर्स भी थे । एक कर्मचारी कुछ दस्तावेज़ों पर साहब के हस्ताक्षर ले रहा था । डॉ. दागी के पेश होते ही व्यंग्य वाण छोड़ा गया – "सुना है आपने एक कॉलेज में हेल्थ अवेयरनेस पर बड़ा अद्‌भुत लेक्चर दिया है । पूरे शहर में हल्ला हो गया है" ।

दरबार में बैठे विद्वान प्रोफ़ेसर्स की मुस्कराती हुयी व्यंग्य निगाहों के तीर चलते रहे और डॉ. दागी हर हमला झेलने के लिये मानसिक रूप से स्वयं को तैयार करते रहे ।

डॉ. दागी ने व्यथित होकर अपने इस अपराध के लिये हाथ जोड़कर साहब से माफ़ी माँगी और स्वयं को एक अवांछित तत्व मानते हुये भविष्य में बिहैवियर चेंज कम्यूनिकेशन का कोई काम उनके शहर में नहीं करने का वादा किया ।

डॉ. दागी के इस तरह सरेण्डर कर देने और उनकी दीन-हीन दशा से साहब संतुष्ट हुये । उन्होंने दागी को आश्वस्त करते हुये इस सम्बन्ध में उनसे कोई स्पष्टीकरण न माँगने का भरोसा दिलाया और एक बार फिर हिदायत दी कि उन्हें वहाँ कोई काम नहीं करना है ।

डॉ. दागी बहुत देर तक दीन-हीन अपराधी बने बने बैठे रहे । जब विद्वान प्रोफ़ेसर उठकर चले गये और दस्तावेज़ों पर साहब के हस्ताक्षर करवाने वाला कर्मचारी भी चला गया तब दागी ने कुछ कहने की अनुमति माँगी । अनुमति मिलते ही दागी ने कहना शुरू किया – "हम डॉक्टर हैं,

चिकित्सा के साथ-साथ प्रेवेंटिव एण्ड सोशल मेडीसिन पर भी काम करना हमारी अहम ज़िम्मेदारी है। यहाँ हम इधर से उधर बेकार घूम रहे हैं क्या इससे लोकहित प्रभावित नहीं हो रहा है ? क्या मुझे स्वस्फूर्त चेतना से अपने दायित्वों को पूरा नहीं करना चाहिये ?"

साहब ने गम्भीर होकर दागी को प्रशासनिक मज़बूरियों का हवाला देते हुये कहा – "किंतु आप कोई भी काम बिना हमारी इज़ाज़त के नहीं कर सकते। क्या आपने हमसे परमीशन ली थी?"

दागी ने कहा – "हाँ ! हमने आपसे लिखित परमीशन माँगी थी और आपने हमारा आवेदन हमें वापस कर दिया था किंतु हमें अपने पदीय दायित्वों के लिए परमीशन की ज़रूरत क्यों है? क्या हमें हर रूटीन वर्क के लिये लिखित परमीशन की ज़रूरत है ?"

साहब ने कहा – "हाँ ! ज़रूरी है। लिखित परमीशन के बिना आप कुछ नहीं कर सकते"। दागी ने कहा – हम पिछले कई सालों से लोकहित के अलग-अलग प्रोजेक्ट्स पर काम करने और रिसर्च के लिए लिखित परमीशन माँगते रहे हैं। हमें आज तक परमीशन नहीं दी गयी। यह किस तरह का लोकहित है? और अब हमें सामान्य ओ.पी.डी. और नेशनल हेल्थ मिशन के रूटीन कामों के लिये भी रोका जा रहा है। हमारे इस कृत्य से शासन की कोई क्षति नहीं हुयी है फिर भी हमारे साथ अपराधियों जैसा व्यवहार किया जा रहा है। हम इसे ह्यूमन रिसोर्सेज़ का दुरुपयोग मानते हैं। हमारी गलती यही है कि हम ऐसे प्रशासनिक अत्याचारों का विरोध एक सुर में नहीं कर पाते।

साहब उठकर खड़े हो गये। दोनों बात करते-करते बाहर निकले। साहब ने कार में बैठते हुये कहा – "इस तरह आपकी मुश्किलें कम नहीं होंगी, आपको समय के अनुसार चलना चाहिये। अभी तो आप अपनी नौकरी बचाइये"।

दागी ने पूछा – "बिना काम वाली नौकरी?"

कार आगे बढ़ चुकी थी। सड़क पर खड़े डॉ. दागी सोच रहे थे – क्या अब मुझे स्तीफ़ा नहीं दे देना चहिये!

***

२९. जनक्रांति

भीमा झाड़ी ने जेल के डॉक्टर को देखते ही पूछा– "साहब! चैती को देखा? कैसी है?"

"ख़ून की कमी है, सिकलिंग का मरीज़ इतनी ज़ल्दी ठीक कहाँ होता है? समय तो लगेगा।" – डॉक्टर ने प्रश्न के साथ उत्तर दिया और लापरवाही से आगे बढ़ गया।

भीमा झाड़ी और चैती पोया दोनों एक ही जेल में थे। पुलिस के मुख़बिर के कारण चैती पकड़ी गयी थी। और भीमा? भीमा ने तो जानबूझकर ख़ुद को पकड़वा दिया था। भीमा और चैती दोनों ही पुलिस के गवाह बन गये। भीमा उन दिनों एक सपने में खोया रहता, उसे उम्मीद थी कि वह छोड़ दिया जायेगा, सरकारी गवाह जो बन गया था। उसने सोचा, जेल से बाहर निकलकर वह चैती के साथ कहीं दूर चला जायेगा ...बहुत दूर। और वास्तव में एक दिन जेल से निकलकर वह दूर चला गया ...बहुत दूर। किंतु चैती उसके साथ नहीं जा सकी।

भीमा तब नौ साल का था जब पहली बार दादा लोगों की सभा में गया था। तेलुगू शैली में हिन्दी मिश्रित गोण्डी बोलने वाले तीन जवान दादा और एक जवान दादी ने महुआ के पेड़ तले अपनी बैठक जमायी थी। एक दादा तो बहुत दुबला पतला था और ख़ूब काला भी। काले तो सभी थे पर वह दुबला वाला कुछ अधिक ही काला था। दादी उतनी दुबली नहीं थी पर मोटी भी नहीं थी, उसका रंग बाकी सबकी अपेक्षा थोड़ा सा साफ था। उस मंडली में वही सबसे आकर्षक थी। उस दिन गाँव भर के बच्चों को बुलाया गया था, एक दुबले-पतले दादा ने खड़े होकर भाषण दिया था। भीमा को भाषण तो समझ में नहीं आया पर गीत अच्छा लगा था जो उनके साथ की उस आकर्षक लड़की ने गाया था। लोगों ने बताया कि भाषण देने वाले का नाम गोपन्ना है, वह "जनक्रांति" शब्द का बारम्बार उल्लेख किया करता था।

गोपन्ना के साथ वाला दूसरा दादा, जिसका नाम सोयम मुक्का था, चुप-चुप रहता था, शायद वह केवल ढपली बजाने के लिये ही था। भीमा को उसका ढपली बजाना अच्छा लगा था। उसका मन होता था कि वह भी ढपली बजाये, पर बजाना तो दूर उसे छूने का भी साहस वह नहीं जुटा पाता था। दादाओं की टोली अक्सर उसके गाँव आया करती थी, हर बार जनक्रांति और शोषण को समाप्त करने के लिये एक लम्बी लड़ाई की कसमें खायी जाती थीं और ढपली बजा-बजा कर किसी नये सबेरे का गीत गाया जाता था। सभा हर बार लाल सलाम के साथ शुरू होती और लाल सलाम के साथ ही समाप्त हो जाती। उनके झण्डे भी लाल रंग के होते थे। भीमा को लाल रंग अच्छा नहीं लगता था, उसे जामुनी रंग पसन्द था। क्रांति-गीत के समय एकाग्रचित्त भीमा का मन ढपली वाले की अंगुलियों के साथ नर्तन करता रहता। फिर एक दिन वह भी आया जब उसके छोटे-छोटे हाथों में ढपली थमा दी गयी। भीमा को सीखने में समय नहीं लगा, अब वह भी क्रांति-गीत गाने लगा था।

भीमा गाँव के प्रायमरी स्कूल में पढ़ता था। एक दिन कोरसा सन्नू गुरु जी ने क्लास में बताया कि दुनिया में कुछ लोग गरीबों का खून चूसते हैं, बड़े-बड़े लोग रिश्वत लेकर विदेशी बैंक में पैसा जमा करते हैं जिसके कारण देश में गरीबी है और लोग भूख से मर रहे हैं। गुरु जी ने यह भी बताया कि वह दिन अब दूर नहीं जब दादालोग इन सबको मार कर देश में साम्यवादी सरकार की स्थापना करेंगे। गुरु जी उस दिन ख़ूब नशे में थे, पीते तो रोज ही थे लेकिन उस दिन कुछ अधिक ही पी ली थी। भीमा की समझ में

साम्यवादी सरकार का कोई स्वरूप नहीं था सो वह कुछ दिन तक इसी उधेड़बुन में बना रहा। फिर एक दिन जनसभा में दादा ने भी साम्यवाद और माओवाद का नाम लिया। भीमा की उलझन और बढ़ गयी थी। जैसे-जैसे भीमा बड़ा होता गया, ढपली बजाने में उसकी निपुणता बढ़ती गयी। यह माओ की ढपली थी जिसमें से साम्यवाद का सुर निकलता था और जिसका रंग सुर्ख़ लाल हुआ करता था। पाँचवी पास करते-करते भीमा के हाथ में बन्दूक भी आ गयी थी। उसे निशाना लगाने, दुश्मन पर हमला करने, सूचनायें लाने आदि का प्रशिक्षण दिया जाने लगा। यह सब उसे किसी नयी दुनिया में ले जाने वाला जैसा लगता था। छठवी कक्षा की पढ़ाई के लिये उसे दूर के एक गाँव में जाना था पर दादाओं ने मना कर दिया। उससे कहा गया कि क्रांति के लिये पढ़ने की आवश्यकता नहीं। लोग पढ़-लिख कर बड़े-बड़े अधिकारी बनते हैं और फिर ग़रीबों का ख़ून चूसते हैं। माओवाद की महिमा ने भीमा की बुद्धि का प्रक्षालन कर दिया था, वह पूरी तरह एक महान कार्य के लिये समर्पित हो गया।

बत्तीस साल का भीमा एरिया कमाण्डर बनकर देश के दुश्मनों के ख़िलाफ़ माओवादी जंग में शामिल हो गया। उसकी दृष्टि में सारे नेता घोटालेवाज हैं, सारे अधिकारी रिश्वख़ोर हैं, सारे व्यापारी जमाख़ोर और मिलावट करने वाले हैं। पूरा देश ही दुश्मन है, सबको मारना होगा, साम्यवाद लाने के लिये माओवाद लाना होगा। कभी लाल रंग को नापसन्द करने वाला भीमा आज लाल रंग का दीवाना था। ढपली बजाने वाला भीमा माओ की ढपली बजाने में निपुण हो गया था।

एक दिन अचानक भीमा को लगा कि शोषण तो मनुष्य की प्रवृत्ति में है। शोषण हर कहीं व्याप्त है, शोषण के ख़िलाफ़ हथियार उठाने वाले भी शोषण करने की भूख से व्याकुल हैं। वे भी शोषण करना चाहते हैं, नये कलेवर और नये पाखण्ड के साथ ...केवल अवसर भर मिलने की देर है। तो यह सारा खेल अवसर पाने के लिये ही है?

दस वर्ष की उम्र से लेकर बत्तीस वर्ष की उम्र तक जिस भीमा ने साम्यवाद के लिये अपना सब कुछ न्योछावर कर दिया था उसी भीमा को अचानक साम्यवाद से नफ़रत होने लगी। किन्तु यह नफ़रत अचानक नहीं हुयी थी उसे। जब पहली बार उसे टँगिया से निर्ममतापूर्वक प्रहार करके खरगोश मारने के लिये कहा गया था ...तब खरगोश को तड़पते देखकर उसका मन कितने दिन तो बुझा-बुझा सा रहा था। दर्द और ख़ून के प्रति योद्धा की संवेदना की हत्या करना आवश्यक है। भीमा को निष्ठुर बनाने के सभी प्रशिक्षण दिये गये थे। पुलिस के घायल पड़े जवान के सिर और गुप्तांग पर टँगिया से घातक प्रहार, सिर्फ़ यह पता करने के लिये करना कि वह जिन्दा है या नहीं, इसी निष्ठुरता का एक क्रूरतम प्रशिक्षण हुआ करता था। भीमा क्रूर बनता गया पर अन्दर ही अन्दर कुछ शोर भी होता रहा। यह शोर तब असह्य हो गया जब एक रात चैती की चीख उसके कानों से टकराई।

सिल्ले गट्टा की चैती पोया दण्डकारण्य जनमिलिशिया की सक्रिय सदस्य! वह कब माओवादी बन गयी, उसे याद भी नहीं। उसे बस इतना याद है कि होश सँभालने के साथ ही उसने स्वयं को माओवादियों के बीच पाया था। गेहुँवा रंग, बड़ी-बड़ी आखें और गोल चेहरे वाली चैती की चर्चा कहाँ नहीं थी, उसके अपने दल से लेकर अन्य दलों तक हर कहीं चैती की जवानी कहर ढाती थी। तब वह चौदह साल की थी जब एक दिन बोद्दू रात को मटन-भात खाने के बाद उसे एक झाड़ी में ले गया था। चैती अबोध थी पर इतनी भी नहीं कि बोद्दू की हरकतों को न समझ सके। ...रात का समय, जंगल झाड़ी, बलिष्ठ बोद्दू, मटन की गर्मी, शराब का नशा, कमसिन चैती की ख़ूबसूरत आँखें ...। बोद्दू दल का मुखिया था, चैती का

प्रतिरोध सफल नहीं हो सका। बाद में वह कई दिन तक गुमसुम बनी रही। वह एक ही बात सोचती – "क्या यह भी जनक्रांति का एक हिस्सा है?"

चैती अब अट्ठाइस साल की तोप है। बोद्दू के बाद जोगा, लिंगैया और पदाम भी उसे कभी-कभी झाड़ी में ले जाया करते थे। वे उसे बम नहीं तोप कहते थे, पर चैती सोचती कि इसमें भला उसका क्या दोष? भीमा को यह सब अच्छा नहीं लगता था, किंतु प्रतिरोध करने की स्थिति में वह भी नहीं था। चैती के प्रति भीमा की सहानुभूति गहरी होती चली गयी। फिर वह धीरे-धीरे चैती को लेकर गम्भीर होता गया। इससे चैती को कुछ लाभ हुआ किंतु बस इतना ही कि अब उसे झाड़ियों में कम जाना पड़ता था। जनक्रांति का यह हिस्सा भीमा को अच्छा नहीं लगता था, उसे लगा माओवाद भी शोषण से मुक्त नहीं है। किसी स्त्री की इच्छा के विरुद्ध उसका उपभोग ...वह भी कई लोगों के द्वारा ...यह न्याय कैसे हो सकता है? दल में शामिल नये लोगों की नसबन्दी, शादी करने पर प्रतिबन्ध, स्त्री की इच्छा के विरुद्ध उसका उपभोग... जनक्रांति में इन सबका कोई स्थान नहीं होना चाहिये।

एक दिन मुखबिर की सूचना पर चैती पकड़ी गयी। भीमा व्यग्र रहने लगा, वहाँ जेल में पता नहीं कैसा व्यवहार होता होगा उसके साथ। उसने बहुत से किस्से सुन रखे थे कैदियों के। भीमा के लिये माओवाद का आकर्षण आसमान से ज़मीन पर आ चुका था। उसे अपने जीवन का महत्वपूर्ण निर्णय लेना था।

फिर एक दिन सबने सुना कि भीमा भी पकड़ा गया। अब भीमा और चैती एक ही जेल में थे किंतु उन्हें लगता था जैसे कि वे दोनों एक-दूसरे से मीलों दूर थे फिर भी भीमा को संतोष था कि किसी न किसी तरीके से वह चैती का हाल जानता रहेगा।

कुछ साल जेल में बिताने के बाद दोनों को मुक्त कर दिया गया। दोनों ने विचार किया कि उन्हें जंगल से दूर चले जाना चाहिये ...जहाँ वे अपने सपनों को पंख लगा सकें। उन्होंने दिल्ली जाने की योजना बनायी, सोचा था कि दो जवान लोग जहाँ पसीना बहायेंगे वहाँ जीने की क्या मुश्किल हो सकती है।

जिस दिन उन्हें दिल्ली जाना था उसके ठीक एक दिन पहले ही भीमा चैती को बिना कुछ बताये चला गया... चैती राह देखती रही पर वह नहीं आया। तब लिंगैया ने कुटिल हँसी के साथ सूचना दी कि बोद्दू ने भीमा को गोली से उड़ा दिया। चैती न रोयी... न चीखी... न चिल्लायी... बस कुछ समय के लिये मानो जड़ सी हो गयी।

उस दिन एक टार्गेट तय किया जाना था। दल के सभी प्रमुख लोग गोल घेरा बना कर बैठे थे, सभी को दिशा निर्देश दिये जाने थे। जब सभा समाप्त हुयी तो चैती उठकर बोद्दू के पास आयी, जैसे कि कुछ पूछना चाहती हो। किंतु पास आते ही चैती ने बोद्दू के सिर में गोलियाँ उतार दीं। सब सन्न रह गये। जोगा ने चैती की ओर बन्दूक तान ली, तभी लिंगैया चिल्लाया – "छोड़ दे उसे .....।"

चैती अब भी उसी दलम में है किंतु अब उसे कोई महत्वपूर्ण ज़िम्मेदारी नहीं दी जाती सिवाय इसके कि वह जब-तब झाड़ी में चली जाया करे।

***

३०. तापसी की कहानी

पतित हुये पर्ण और विलगित मूल जीवन का संकेत नहीं दिया करते, वहाँ तो बस जीवन का इतिहास भर शेष रह पाता है। पर्णपात तो ऋतु-धर्म है वृक्ष का, समय आने पर जीर्ण होते ही विदा ले लेते हैं पर्ण। पतझड़ के बीतते ही वसंत में किलकते हैं नवपल्लव। किंतु यदि पुराने होने के कारण मूल ही विदा लेलें तो?

जीवन के लिये किसी वृक्ष के मूल और पत्र एक दूसरे पर अन्योन्याश्रित होते हैं। पत्र न हों तो मूल एक लम्बी अवधि तक जीवित रह सकती है पर मूल के अभाव में पत्तों और शाखाओं का जीवित रह पाना सम्भव नहीं हो पाता। मर जाने के बाद भी खड़ा तो रहता है वृक्ष पर झड़ जाती हैं पत्तियाँ ...श्रीहीन हो जाता है वृक्ष। संस्कार जैसे निर्जीव भाव से ही जीवन को सार्थक कर पाते हैं हम और जीवन श्रीयुक्त हो पाता है। मनुष्य जीवन के इस उपेक्षित होते जा रहे विषय के रहस्य को चिंतामणि की एकलौती बेटी तापसी से अच्छा और कौन जान सकेगा भला!

आज मैं आपको उसी रूपसी तापसी की कहानी सुनाने बैठा हूँ। तापसी की कथा कहना कोई सरल काम नहीं है, तो भी सुनाना तो पड़ेगा ही। ऐसे दुर्लभ चरित्र मिलते ही कहाँ हैं!

तो सुनिये, यह कहानी बिहार के एक छोटे से कस्बे ब्रह्मपुर से प्रारम्भ होकर बनारस और दिल्ली होती हुई मुम्बई की ओर विस्तार पाती है। ब्रह्मपुर के खपरैल की छत वाले एक कच्चे से घर में जन्मी थी तापसी। ब्राह्मण परिवार के संस्कारों के अनुरूप दादी ने ही बड़े अध्यात्मिक भाव से नामकरण किया था उसका। तापसी बड़ी हुयी तो अन्य बच्चों की तरह उसने भी पाठशाला जाना शुरू किया। सुदीर्घनयन, उन्नतनासिका और लम्बी केश राशि वाली चंचल तापसी ककड़ी की बतिया जैसी बढ़ रही थी ...और कहने की आवश्यकता नहीं कि उसी अनुपात में दादी की चिंता भी। दूध-रोटी लिये दादी नित्यप्रभा देवी का स्नेह, तापसी की शाला से वापस आने की प्रतीक्षा करता रहता। किंतु तापसी शाला से घर आते ही अपना बस्ता एक ओर पटक उड़न छू हो जाती। वह लड़कों के साथ गुल्ली डण्डा खेलती ..जामुन के पेड़ पर चढ़ अपनी मित्र मण्डली के लिये जामुन तोड़ती।

दादी खीझती रहतीं – अरे मुयी! यही सब करना था तो लड़का बनकर क्यों नहीं पैदा हुयी थी!" तापसी मुस्कराती- "बहुत सरल है दादी, मुझे आज से ही तापस पुकारना शुरू कर दीजिये"

थोड़ी और बड़ी हुयी तो पिता की राजदूत मोटर साइकिल उसकी पसन्दीदा सवारी बन गयी। ब्रह्मपुर के लोग जब उसे राजदूत पर सवार हो घूमते देखते तो मन ही मन कहते, "पुतली बाई से कम नहीं निकलेगी लड़की"।

शालेय शिक्षा पूरी होते ही वह आगे की पढ़ाई के लिये बनारस आ गयी ..अपने मामा के घर। पढ़ाई का हाल यह था कि जब अन्य लड़कियाँ पढ़ायी की योजना बनातीं तो तापसी छात्र संघ के चुनाव की रणनीति में व्यस्त होती। स्नातक प्रथम वर्ष का परीक्षा परिणाम देखकर मामा ने माथा पीट लिया। ब्रह्मपुर से पिता को बुलाया गया, गम्भीर मंत्रणा हुयी और अंत में तय किया गया कि तापसी को बनारस छोड़ना होगा।

किंतु वह तापसी ही क्या जो किसी की बात मान ले, उसने भी अपना निर्णय सुना दिया कि वह पढ़ाई छोड़कर ब्रह्मपुर नहीं जायेगी। मंत्रणा का द्वितीय चक्र चला, और इस बार तय हुआ कि पढ़ायी

अबाधित रहेगी किंतु बनारस तो उसे छोड़ना ही होगा। और इस तरह तापसी अपने ख़ूंख़ार माने जाने वाले सबसे छोटे मामा के घर दिल्ली भेज दी गयी। किंतु छोटे मामा का कुख्यात ख़ूंख़ारत्व गुण लेश भी काम न आया। स्नातक अंतिम वर्ष तक पहुँचते-पहुँचते वह एक "नचनिया" के चक्कर में पड़ गयी। हुआ यूँ कि एक दिन वह रागिनी और प्रखर के साथ नाटक देखने पहुँची और इप्टा के रंगमंच पर अपनी प्रथम भेंट में ही तापर को दिल दे बैठी।

तापर का वास्तविक नाम था रामकृष्ण। तापसी उससे पूछती- "नाम से तो तुम त्रेता और द्वापर दोनों का प्रतिनिधित्व करते हो?" रामकृष्ण नृत्य विशारद था.... तापसी जैसा वाक्पटु नहीं। बेचारा टुकुर–टुकुर ताकता रहता। तापसी ने प्रारम्भ में उसे त्रेताद्वापर पुकारना शुरू किया था। बाद में पुकारते-पुकारते दोनों युगों के आदि अक्षरों का धर्म की तरह ह्रास होते-होते लोप हो गया तो शेष बचा तापर...फिर यही उसका नाम पड़ गया।

तापसी की आगे की पढ़ायी तापर के साथ दिल्ली के राष्ट्रीय नाट्यकला संस्थान में प्रारम्भ हुयी। ब्रह्मपुर में दादी ने सुना तो अपने पुत्र चिंताहरण से बोलीं- " बस-बस! हो गयी पढ़ायी ...अब और नहीं। किसी दिन नाक कटायेगी ये लड़की, जल्दी हाथ पीले करो इसके। सीतामढ़ी वाले मिसिर जी कबसे कह रहे हैं कि उन्हें इस घर की कन्या को अपनी बहू बनाने का कितना मन है"।

जैसे हाथ पीले कर देने मात्र से ही तापसी के अन्दर तीव्र गति से प्रवहमान नदी पर बाँध बन जायेगा। किंतु यह सोचते समय दादी यह भूल गयीं कि बाँध बनने के क्षण से ही बंदिनी नदी का प्रवाह अन्दर ही अन्दर मसोसता हुआ बाँध को फोड़ने की तैयारी में लग जाता है...और जिस दिन यह तैयारी पूरी हो जाती है उस दिन सुदृढ़ से सुदृढ़ बाँध को भी कोई शक्ति बचा नहीं पाती।

ब्रह्मपुर में जो मंत्रणा चल रही थी वह आगम के विपरीत थी इसीलिये होनी के अनुरूप उधर दिल्ली में कुछ दूसरा ही गुणा-भाग चल रहा था। नित्यप्रभा देवी ने अपनी पोती का नामकरण करते समय यह कहाँ सोचा होगा कि वही नन्हीं सी तापसी बड़ी हो कर उसकी आशाओं के विपरीत ब्राह्मण परिवार की परम्पराओं को धता बताती हुयी नित नई डगर बनाने के कीर्तिमान रचेगी।

फिर एक दिन बिना किसी को बताये ही निर्भीक तापसी ने तापर के साथ कला और सपनों की नगरी मुंबई को प्रस्थान किया। उनके लिये अब कला ही प्राण थी और रंगमंच ही उनके जीवन का पर्याय। वर्जनाओं को तोड़ती ब्राह्मण कन्या तापसी ने बिना परिणयसूत्र में बंधे ही रामकृष्ण को अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया। मुम्बई में दोनों नवोदित कलाकारों का जीवन कड़े संघर्ष के साथ प्रारम्भ हुआ।

संघर्ष के उन्हीं कठिन दिनों में तापसी से परिचय हुआ था मेरा... मुम्बई के गोराई समुद्र तट पर। उन दिनों वह दार्शनिक सी हो रही थी, चुप है तो चुप और जब बोलना शुरू करती तो बोलती ही रहती। समुद्र की ओर अँगुली उठाकर लम्बी रेखा सी खींचती हुयी बताया उसने, " यहाँ से यह सीधा रास्ता आपको अफ्रीका ले जायेगा...कैप ऑफ़ गुड होप"।

मैंने उत्तर दिया, "किंतु अभी मैं वहाँ जाने के लिये तैयार हो कर नहीं आया"।

तापसी हँस दी। समुद्र के किनारे खड़े होकर किसी लड़की को हँसते देखना एक अलग ही सम्मोहन उत्पन्न करता है...और तापसी तो थी ही भुवनमोहिनी।

महानगर मुम्बई में कला के लिये प्रारम्भ हुआ उन दोनों का संघर्ष शीघ्र ही जीवन के लिये कठिन संघर्ष में परिवर्तित हो गया। जीवन के कठोर धरातल की कठोर सत्यता ने स्वप्नों के पंख कतरने प्रारम्भ कर दिये थे। शीघ्र ही उन्हें पता चल गया कि सपनों की उड़ान से अलग जीवन की अपनी शर्तें होती हैं जिन्हें हर हाल में पूरा किये बिना अस्तित्व बचा पाना सम्भव नहीं।

संघर्ष के इन दिनों में उसे ब्रह्मपुर की बहुत याद आती... बचपन के मित्र, गुल्ली-डण्डा, गजानन बाबू की गाय का बाछा, ददन भैया की बकरी के छौनों की उछल-कूद, बड़ा तालाब, मीठे सिंघाड़े, गन्ने के खेत, आम के बाग, कच्चे अमरूद, झरबिरिया के खट्टे बेर, तेज आँधी में हवा की कुपित दहाड़, तपी हुयी धरती पर पहली बौछार का स्वागत करती ब्रह्मपुर की माटी की सुगन्ध... और भी न जाने क्या-क्या। उसे खेतों की टेढ़ी-मेढ़ी मेड़ों पर चलना बहुत अच्छा लगता था... दोनों हाथ फैलाकर... जैसे कोई पंछी उड़ने की चेष्टा में हो। वहाँ की मामूली सी चीज़ें भी अब उसके लिये महत्वपूर्ण हो गयी थीं। उसे वहाँ की हर चीज़ जार-जार रुलाती थी... और दादी की याद करके तो जैसे उसकी आँखों के बाँध ही फूट पड़ते।

तापर उसका मन रखने के लिये कहता, "चलो न! एक बार हो कर आयें ब्रह्मपुर"। वह मना कर देती, "नहीं... वह रास्ता तो मैं स्वयं ही बन्द करके आयी हूँ... अब किस मुँह से जाऊँगी वहाँ?" इसके बाद तो जैसे पूरे अरब सागर की सारी लहरें एक साथ उछल कर उसके चेहरे को भिगोने लगतीं। तापर कुछ बोल तो नहीं पाता किंतु आत्मग्लानि के बोध से अन्दर ही अन्दर दरकता रहता। उसका बस चलता तो तापसी के लिये क्या-क्या नहीं कर डालता। वह मायूस होकर एक ओर बैठा रहता... या फिर तापसी का सिर अपनी गोद में रख उसके बालों को सहलाता रहता और तापसी हिचकियाँ लेती रहती... ।

उस दिन दोपहर से ही बादल घिरे हुये थे शाम होते-होते ढ़रक पड़े। तापसी ने सिगरेट सुलगायी और खिड़की के पास खड़े होकर बाहर झाँकते तापर के पास आकर खड़ी हो गयी। तापर ने देखा तो चौंक गया, "यह क्या कर रही हो?"

उसने एक हलका कश लिया और खाँसती हुयी बोली, "क्यों... मैं नहीं पी सकती क्या?"

तापर ने झट से सिगरेट छिनाकर फेक दी, कहा- "नहीं... लड़कियाँ सिगरेट नहीं पीतीं"

तापसी ने बुरा सा मुँह बनाया, बोली- "किस धर्मशास्त्र में लिखा है कि सिगरेट सिर्फ़ मर्द ही पी सकते हैं... और यह लड़कियों के लिये वर्ज्य है?"

तापर दुखी हो गया- "मैं तुम्हारी तरह तर्क नहीं कर सकता पर भगवान के लिये ऐसा मत करो"

तापसी ने कहा- "सिगरेट के बिना भी लोग जीवित रह सकते हैं... फिर भी लोग पीते हैं... क्योंकि उन्हें ऐसा करना अच्छा लगता है... और आज मेरा भी मन है... बल्कि मेरा मन तो तुम्हारे साथ बैठकर शराब पीने का है"।

तापर ने घबराकर तापसी की ओर देखा, वह बुरी तरह डर गया। यह हो क्या गया है आज तापसी को? उसने माथा छूकर देखा फिर कहा- "चलो, अन्दर चलो। तुम्हारी तबियत ठीक नहीं है"।

तापसी हँस पड़ी, "विचित्र बात है, तुम लोग सिगरेट–शराब पियो तो सामान्य है और मेरी इच्छा हो तो मेरी तबियत ख़राब है? अच्छा तापर यह बताओ ये सब नियम बनाता कौन है?"

तापर रोने लगा, "ये तुम्हें क्या होता जा रहा है? देखो जीवन से इस तरह निराश मत हो। मैं यथाशक्ति कर तो रहा हूँ। हम भूखों तो नहीं मर रहे न! ये दिन भी ऐसे ही नहीं रहेंगे... हम धीरे-धीरे सफलता की ओर आगे बढ़ते ही जा रहे हैं किंतु समय तो लगेगा न! तुम चिंता मत करो तापसी..."।

तापसी गम्भीर हो गयी, "मैं तुम्हारे साथ खुश हूँ तापर! मुझे बहुत सारा पैसा नहीं चहिये... पर न जाने क्यों मुझे लगता है कि हमने बहुत कुछ खो दिया है... कुछ ऐसा जो अब कभी हमें वापस नहीं मिलेगा"। यह कहते-कहते फफक पड़ी वह। दोनों फिर आँसुओं के सैलाब में डूब गये।

वर्जनायें तोड़ना इतना कठिन नहीं है... जो कठिन है वह है अपनी मान्यताओं को विस्मृत कर पाना, अपनी जड़ों को छोड़कर दूर जा पाना। किंतु तापसी तब यह सब कहाँ समझ पायी थी!

संस्कृतियों एवं परम्पराओं का आदान-प्रदान मानवीय स्वभाव की एक सहज प्रक्रिया रही है। इस प्रक्रिया में उत्थान और पतन दोनों की प्रबल सम्भावनायें होती हैं। परम्परायें यदि स्थानापन्न हों तो ऐसी सम्भावनायें बढ़ जाती हैं, यह इस बात पर निर्भर करता है कि हमने अपना क्या महत्वपूर्ण त्यागा और दूसरों का क्या अव्यावहारिक अपनाया अथवा अपना क्या अव्यावहारिक त्यागा और दूसरों का क्या महत्वपूर्ण अपनाया। कई बार नवीनता के मोह में हम अपनी जड़ों को गम्भीर क्षति पहुँचा डालते हैं, तब विशाल तने को भी सूखने में देर नहीं लगती। यह ठीक उसी प्रकार की प्रक्रिया है जैसे देह की प्रकृति समान न होने पर दान में प्राप्त प्रत्यारोपित अंग कितना भी आवश्यक क्यों न हो किंतु उसे भी अपनी देह अपनाने से मना कर देती है। नवीनता के आकर्षण में आयातित परम्पराओं को तापसी के सुषुप्त विवेक की माटी में गहरी दबी पड़ी भारतीय जड़ों ने दुत्कारना प्रारम्भ कर दिया था।

उस दिन रंगमंच निदेशक कुलकर्णी की छोटी बेटी की शादी थी। तापसी और तापर बड़े मन से सज-धज कर गये थे। अचानक ही तापसी ने तापर को अलग बुलाकर कहा, "चलो घर चलते हैं"।

तापर भौंचक! अब क्या हो गया? पूछा, "क्या बात है, तबियत तो ठीक है?"

तापसी रोने-रोने को हो रही थी, सिर झुकाकर बोली, "कुछ नहीं... बस यूँ ही... आप घर चलिये... मुझे अच्छा नहीं लग रहा"

दोनों लोग कुलकर्णी से क्षमायाचना कर घर आ गये। आते ही तापसी फूट-फूट कर रो पड़ी। तापर ने बहुत पूछा तो केवल इतना ही कह सकी कि उसे दादी की बहुत याद आ रही है।

जिन परम्पराओं को अनावश्यक और पाखण्ड कहकर उपहास किया करती थी तापसी वे ही अतार्किक परम्परायें अब बहुत महत्वपूर्ण लगने लगी थीं उसे। वह समझ नहीं पा रही थी कि ऐसा क्या है इन पुरानी जड़ों में कि उनके बिना अस्तित्व ही शून्य सा लगने लगा था।

उस दिन तय हुआ कि अब से वे किसी की शादी में नहीं जाया करेंगे। किंतु यह समाधान नहीं था... कुछ था तो बस एक और भटकाव ही।

पड़ोसियों को लगने लगा था कि तापसी आजकल मूडी होती जा रही थी। उसने लोगों से मिलना जुलना भी कम कर दिया था... और बाहर निकलना भी।

तापसी को भी लगने लगा था कि वह दो टुकड़ों में होकर जी रही है। एक तापसी वह जो चलती-फिरती थी और एक वह जो सदा ही कुछ न कुछ सोचती रहती थी। जिस क्षण वह मुम्बई में होती ठीक उसी क्षण वह ब्रह्मपुर में भी होती। इसका परिणाम यह होता कि कभी चाय में चीनी ही नहीं पड़ती तो

कभी दाल में दो-दो बार नमक पड़ जाता। तापर उसकी मनोदशा से परिचित था इसलिये कभी कुछ नहीं कहता... किन्तु उसका कुछ न कहना ही तापसी के लिये एक और दुःख का कारण बन जाता।

उस दिन तो एक बड़ी दुर्घटना होते-होते बची। भोजन पकाते-पकाते तापसी के कपड़ों में आग लग गयी। तापर ने देख लिया तो तुरंत दौड़कर आग बुझाई। मैं उन दिनों मुम्बई में ही था। अचानक जब उनके घर पहुँचा तो तापसी को गुमसुम बैठे पाया और समीप ही तापर को रोते हुये। मैने राहत की साँस ली, एक गम्भीर घटना होते-होते टल गयी थी बस दुपट्टे का एक हिस्सा भर जल पाया था।

उनकी आर्थिक स्थिति पूर्वापेक्षा अच्छी होती जा रही थी किंतु तापसी की मनःस्थिति निरंतर बिगड़ती जा रही थी। अगले ही दिन मैने उन दोनों से बात की और उन्हें ब्रह्मपुर चलकर विधिवत विवाह करने के लिये किसी तरह मना लिया। वर्जनाओं को तोड़ने वाली तापसी अब खुश थी... किंचित सहमी हुयी भी... और अन्दर ही अन्दर कुछ भयभीत भी।

3-

मैं जब उन दोनों को लेकर ब्रह्मपुर पहुँचा तो शाम हो गयी थी। घर में दादी से भेंट हुयी, मिलते ही वे फूट पड़ीं। रोते-रोते बताया कि चिंतामणि और उनकी पत्नी दोनों ही नहीं रहे। तापसी का रोते-रोते बुरा हाल था। उसे देखकर तो मेरी भी रुलाई रुक नहीं पा रही थी। अब किसी से कहने-सुनने जैसी कोई स्थिति नहीं बची थी।

समाज वही जीवित रह पाता है जिसमें तरलता होती है। और इस तरलता के लिये ब्रह्मपुर के लोगों को मैंने अंतःकरण से धन्यवाद दिया। कुछ दिन वहाँ रुककर आनन-फानन में तापसी और रामकृष्ण के विवाह की तैयारियाँ की गयीं।

सदैव वर्जनाओं को तोड़ने वाली लड़की ने अग्नि के समक्ष सात फेरे लेकर एक बार फिर सभी को चकित कर दिया था। दादी के अंतःकरण से आशीर्वाद की बरसात होने लगी थी।

आज पहली बार तापसी ने तापर को उसके नाम से नहीं पुकारा। अपने लिये नया सम्बोधन "सुनिये...!" सुनते ही तापर की आँखों की कोरें भीग उठीं।

***

दो सौ वर्ष पुराना टीपू का शिवाला, महादेवी वर्मा घाट, मेहँदीपुर, कन्नौज